वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL

मार्च-अप्रैल 2024



चटगाँव विद्रोह (20)



भगत सिंह और साथियों के ''इन्कलाब'' के बारे में विचार (23)

30



शची के लम्बे चाचा (39)



सावित्री बाई फूले (5)

जनता की शक्ति के आगे कोई भी शक्ति नही खड़ी हो सकती-फखर जमान

यू.क्लानाथन जी नही रहे



भारत मे तर्कशील आंदोलन के पुरोधा ,फेडरेशन ऑफ इंडियन रैशनलिस्ट एसोसिएशन(FIRA) के संरक्षक और पूर्व महासचिव केरल निवासी यू. कलानाथन जी (84) का 6 मार्च 2024 को रात्रि 11 बजे निधन हो गया।

यू क्लानाथन जी अपने महान कार्य और संगठन FIRA की प्रगति में योगदान के लिए सदा स्मरण किए जाते रहेंगे। उनका मृतक शरीर 7 मार्च 2024 को मेडिकल अस्पताल को चिकत्सीय उपयोग हेतू प्रदान किया गया।

एक स्कूल में शिक्षक के रूप में उन्होंने अपने कर्तव्यों के अलावा अपना समय वैज्ञानिक चेतना और तर्कशीलता के प्रचार प्रसार को समर्पित कर दिया था। केरल राज्य में युक्ति वादी संगम की गतिविधियों में वे सदा सक्रिय रहे साथ ही FIRA के लिए भी लगातार कार्य करते रहे। उन्होंने मलयालम में छपती तर्कशील पत्रिका युक्तिवादी को लगातार बढ़ावा दिया। धर्म को राजनीति से पृथक करने के बिल का ड्राफ्ट उन्होंने तैयार किया एंव इस को लागू कराने के लिए फिरा के सभी संगठनों को संगठित कर दिल्ली जंतर मंतर पर धरना दिया।

FIRA के महासचिव के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान, उन्होंने बहुत ईमानदारी से अपनी जिम्मेदारियों को निभाया और FIRA द्वारा विभन्न गतिविधियों को क्रियान्वित किया । उन्होंने लगातार UGC को धर्मनिरपेक्ष तरीके से लागू करने पर जोर दिया था और साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर अंधविश्वासों के खिलाफ कानून पारित करने की मांग FIRA के बैनर के तहत रखी।

वे लगातार निर्भीक हो कर कार्य करते रहें, यहां तक कि उनके घर पर एक बार बड़ा हमला भी किया गया था परंतु वे विचलित नही हुए।

तर्कशील सोसायटी उनके परिवार के सदस्यों के प्रति अपनी सच्ची और सम्मानजनक संवेदना व्यक्त करती है।

साथी यू.क्लानाथन जी को FIRA में महत्वपूर्ण भूमिका एंव तर्कशील आंदोलन में अहम भूमिका के लिए सदा याद रखा जाएगा।

सक्रिय साथी पदम् सिंह अलविदा!



तर्कशील सोसायटी हरियाणा की तरावड़ी इकाई के प्रधान श्री पदम् सिंह 13.1.2024को बीमारी के चलते इस संसार को अलविदा कर गए। उनका जन्म 3.10.1956 को तरावड़ी में हुआ था। मृत्यु उपरांत उनकी व परिवार की इच्छा अनुसार उनका मृतक शरीर रायबरेली मैडीकल रिसर्च इंस्टीट्यूट ,रायबरेली (उत्तर प्रदेश) में जीवन चानन संस्था करनाल के सहयोग से वे चिकत्सीय उपयोग हेतु प्रदान किया गया। वे सन 2000 में प्रा.बलवंत सिंह के सम्पर्क में आए थे और फिर सोसायटी के सक्रिय सदस्य बन गए,उन्होंने बहुत से तर्कशील कार्यक्रम अपने शहर में करवाए एंव तर्कशील पथ पत्रिका को नियमित रूप से लोगों तक पहुंचा कर उन्हें जागरूक करते रहते थे। बाबा साहेब भीम राव अम्बेडकर ,शहीद भगतसिंह के विचारों से प्रेरित होने के कारण वे समाज सेवा के रूप में सदा सक्रिय रहते थे।वे मैट्रिक तक पढ़ाई किए हुए थे,जीवन यापन के लिए उन्होंने पहले ईंटो केभठों पर कार्य किया और फिर नगर पालिका के कट्रैक्टर बन गए।उनके चार बच्चे हुए जिनमें दो लड़के व दो लड़कियां हैं जिनकी शादी हो गई है।

वे तर्कशील सोसायटी के सक्रिय कार्यकर्ता रहे ,अपने मिलनसार स्वभाव के कारण लोगों के बीच अपनी बात रखते थे।

उनके चले जाने से तर्कशील सोसायटी ने एक सक्रिय कार्यकर्ता खो दिया है।

तर्कशील सोसायटी उनके निधन पर गहरे दु:ख का इजहार करते हुए परिवार के प्रति संवेदना व्यक्त करती है

गुरमीत अम्बाला

मुख्य संपादक
बलबीर लौंगोवाल
balbirlongowal1966@gmail.com
98153 17028
संपादक
गुरमीत अम्बाला
tarksheeleditor@gmail.com
94160 36203
संपादकी मंडल
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार बाई कनेडा
प्रधान TRSC (+1-672-558-5757)
अछर सिंह खरलवीर कवैंटरी (इंगलैंड)
(+44-748-635-1185)
मा. भजन सिंह कनेडा, बलदेव रहिपा टोरांटो

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

राजेन्द्र भदौड़, प्रकाशक,मुद्रक,स्वामी की तरफ से तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट (जलन्धर) से मुद्रित करके मुख्य कार्यालय तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.), बरनाला, (पंजाब) से तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण के लिए जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 **में जमा करा सकते है।**
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर +91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए :

www.tarksheel.org,

http://tarksheelblog.wordpress.com

सर्च करें: tarksheel :

www.archive.org

Readwhere.com

संपादकीय

राजस्थान के बूंदी नामक स्थान में एक ढोंगी बाबा द्वारा 'देव' को खुश करने के नाम पर, चार दलित महिलाओं को उनके पैसे दोगुना करने और एक नि:संतान को बेटे का 'आशीर्वाद' देने की आड़ में बलात्कार करने की खबर सामने आई है। एक और खबर के अनुसार एक मां की अपने 7 साल के बच्चे को ब्लड कैंसर से बचाने के लिए एक तांत्रिक द्वारा सुझाए गए 'उपाय' के तहत उसे गंगा नदी के रुके हुए पानी में बार-बार पकड़कर डुबाने की तस्वीर मीडिया में छाई रही जिसकी परिणति एक माँ के प्यारे बच्चे की मृत्यु के रूप में हुई है। पंजाब के समाणा शहर के पास एक गांव कलवानु के नजदीक भाखड़ा नहर में धार्मिक भावना से नारियल चढ़ाते समय एक महिला अपने डेढ़ साल के बच्चे के साथ फिसल गई और नहर में डूब गई। वशीकरण की आड़ में ज्योतिषी सुनील कुमार ने पठानकोट के मोहल्ला शास्त्री नगर में रहने वाली एक महिला और उसकी बेटी से अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए हवन सामग्री मांगी और उन्हें अगरबत्ती की आग से बेहोश कर मार डाला। मकसद उनकी हत्या कर उनके आभूषण और नकदी लूटकर फरार हो गया जिसमें , यह अलग बात है कि 18 साल पहले हुई इस घटना में वह अब वह पुलिस की गिरफ्त में आ गया है। यह कुछ चुनिंदा घटनाएं हैं। यह घटनाएँ विश्व गुरु भारत में ही घटित हुई हैं। किस तरह एक जनविरोधी व्यवस्था ने आज भी लोगों की चेतना को वैज्ञानिक ढंग से विकसित नहीं होने दिया,जबकि भारतीय संविधान के मौलिक कर्तव्य वैज्ञानिक चेतना के प्रचार प्रसार को प्रेरित करते हैं, यह हम इन और इन जैसी असँख्य दर्दनाक घटनाओं से जान सकते हैं। केवल तकनीकी सुख सुविधाओं का विकास ही वैज्ञानिक विकास नहीं है। किसी देश के वैज्ञानिक विकास का असली पैमाना यह है कि वहां के नागरिकों की सोच कितनी वैज्ञानिक हो गई है। आज भी यदि लोग अन्धविश्वासों, धार्मिक आडम्बरों के कारण मर रहे हैं, लुट रहे हैं तो इसके लिए वे जिम्मेदार नहीं हैं, बल्कि व्यवस्था जिम्मेदार है, जिन्होंने अपने राजनीतिक स्वार्थ साधने के लिए सोच को विज्ञान परक नही होने दिया है। सरकारें धार्मिक यात्राओं के एंव धार्मिक आयोजनों को प्रायोजित करने आदि के लिए सरकारी धन को पानी की तरह बहाती है ताकि लोग अपनी गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई आदि के वास्तविक कारणों को समझ न सकें। शासक अच्छी तरह जानते हैं कि उनका दीर्घजीवन जनता की अज्ञानता में ही निहित है। इसीलिए यदि कोई जागरूक नागरिक, संगठन अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी के तहत लोगों की सोच को वैज्ञानिक बनाने का प्रयास करता है तो वे उस पर धारा 295ए थोप देते हैं। वैज्ञानिक सोच के प्रचार-प्रसार शासकों को किसी भी तरह से माफिक नहीं आते, लेकिन आइए हम धार्मिक 'लबादे' के नीचे छुपे इन जनविरोधी लुटेरे शासकों के असली चेहरों को उजागर करें। किसी भी तरह के प्रभाव के डर को दूर करके वैज्ञानिक जनशक्ति का निर्माण करें। किसी भी डर को त्यागते हुए वैज्ञानिक चेतना के प्रचार प्रसार में लगते हुए जनता को जागरूक करते रहें।जागरूक जनता स्वयं ऐसी जन विरोधी धाराओं को रद्द कराएगी,क्योकि लोगों की शक्ति से बड़ी कोई शक्ति नहीं होती है।

उसके लिए जब तीर्थयात्रा ही मुसीबत बन गई



बलवन्त सिंह लेक्चरार

शिवानी उस समय अपने शहर के एक प्रतिष्ठित कालेज में बी. कॉम की छात्रा थी। उसके पिता का शहर में काफी अच्छा बिजनेस था। उनका छोटा सा परिवार पूरी तरह से एक सुखी परिवार था। उनके परिवार में शिवानी के माता-पिता एवं शिवानी का एक छोटा भाई था। उसके माता-पिता दोनों ही अच्छे पढ़े लिखे थे। शिक्षित एवं एक सभ्रांत परिवार होने के कारण उनके घर के माहौल में बहुत खुलापन था। कालेज में पढ़ रही होने के कारण शिवानी को अपने सहपाठियों के साथ कहीं पर भी आने-जाने की पूरी आज़ादी थी। उनके कालेज की तरफ से किसी न किसी शिक्षाप्रद एवं रमणीक स्थान पर ले जाने वाले टूर पर वह अवश्य जाया करती थी। इसके अलावा भी वे अपनी मित्र-मंडली के साथ किसी न किसी टूरिस्ट स्थान की यात्रा पर दो-चार दिन के लिए निकल जाया करते थी।

एक बार छुट्टियों में शिवानी की मित्र-मंडली के कुछ लड़के-लड़कियों ने राजस्थान के कुछ शहरों में घूमने की योजना बनाई। उनकी उस योजना में अन्य शहरों में घूमने के साथ-साथ प्रसिद्ध तीर्थ स्थान पुष्कर एवं अजमेर शरीफ की यात्रा की योजना विशेष तौर पर बनाई गई। तीर्थों की यात्रा के कहने का अर्थ यह था कि उनकी मित्र मंडली में शामिल दो लड़कियों के मां-बाप उन्हें केवल सैर सपाटे के लिए भेजने को सहमत नहीं थे। मित्र-मंडली के कुछ सदस्यों ने जब यह प्रस्ताव रखा कि हम सभी अपने घर वालों को पुष्कर एवं अन्य तीर्थ स्थानों की तीर्थ यात्रा पर जाने के बारे में ही बताएंगे। पुष्कर धाम की यात्रा पर जाने की बात सुन कर उन लड़कियों के घर वालों ने भी उन्हें अपनी मित्र मंडली के साथ राजस्थान में सैर सपाटे के लिए जाने की सहमति प्रदान कर दी।

उस मित्र मंडली की यात्रा का प्रथम पड़ाव जयपुर में था। दोपहर बाद जयपुर में पहुँच कर उन्होंने सब से पहले एक होटल में चार कमरे बुक करवा लिए। उनकी मित्र मंडली में कुल आठ लोग थे, जिनमें से चार लड़के एवं चार लड़कियां थीं। होटल के प्रत्येक कमरे में केवल दो व्यस्कों के ठहरने की व्यवस्था थी। अपने कमरों में कुछ देर तक आराम करने के बाद शाम को वे सभी शहर के बाजार में घूमने-फिरने के लिए निकल गये। रात के नौ-दस बजे तक बाजार में घूमने-फिरने तथा खाना-बगैरह खाने के पश्चात् वे अपने-अपने कमरों में रात्रि-विश्राम के लिए चले गए। शिवानी की अजय के साथ तथा उसकी एक सहेली पायल की दूसरे लड़के विक्रम के साथ काफी अंतरंग दोस्ती थी। इसलिए उन्होंने कमरों में जाते समय पहले से ही बनाई गई योजना के अनुसार शिवानी एवं पायल ने अजय व विक्रम के कमरे के साथ लगने वाला कमरा ले लिया। शेष लड़के-लड़कियां भी अपने-अपने कमरों में चले गए। पहले से बनाई गई योजना के अनुसार लगभग आधी रात को शिवानी एवं अजय तथा पायल एवं विक्रम दोनों ही जोड़ों के रूप में दो कमरों में चले गये। रात को मौज-मस्ती करने के बाद सुबह-सवेरे ही वे एक कमरे में दोनों लड़के तथा दूसरे कमरे में दोनों लड़कियां जा कर सो गये। उनकी इस चालाकी के बारे में उनकी मित्र मंडली के शेष सदस्यों को कोई भनक भी न लग सकी। इस तरह से दो दिन तक जयपुर में घूमने-फिरने व ऐतिहासिक स्थानों को देखने के बाद उस से अगली सुबह वे पुष्कर धाम के लिए निकल गये।

पुष्कर धाम में जाकर भी उन्होंने सबसे पहले एक होटल में कमरों की बुकिंग की तथा बाद में शहर में घूमने के लिए निकल गए। दिन में शहर में घूम-फिर कर रात को होटल के कमरों में पहले की भांति अजय व विक्रम तथा शिवानी एवं पायल अलग-अलग साथ लगने वाले कमरों में सोने के लिए चले गये। पहले की भांति ही आधी रात के समय पर उन्होंने जोड़ों के रूप में मौज-मस्ती करने के लिए अपने कमरे बदल लिए। पहले की भांति ही सारी रात मौज-मस्ती करने के बाद सुबह सवेरे वे फिर से अपने-अपने कमरों में चले गए। अगली सुबह वे सभी तैयार हो कर पुष्कर झील के किनारे मंदिरों में दर्शन करने के लिए चल पड़े। हिन्दू धर्म की मान्यताओं के अनुसार पुष्कर तीर्थ

को सभी तीर्थों का गुरू माना जाता है। साथ ही यह भी मान्यता है कि सभी तीर्थों की यात्रा का फल पुष्कर स्नान एवं दर्शन से ही मिलता है। पुष्कर तीर्थ में वैसे तो बहुत से मंदिर हैं परन्तु पुष्कर में सब से प्रसिद्ध मंदिर ब्रह्मा मन्दिर ही है। पुष्कर तीर्थ पर अधिकतर मंदिर पुष्कर झील के आसपास ही स्थित हैं। उनकी मित्रमंडली पुष्कर झील के किनाारे बने कई घाटों पर भी गई तथा साथ ही साथ उन्होंने कई मंदिरों के दर्शन एवं पूजा-अर्चना भी की। रात्रि के नौ दस बजे तक तीर्थ पर तथा बाजार में घूम-फिर कर और रात्रि का भोजन करने के बाद वे अपने होटल में आ गए। होटल में पहुँचने पर शिवानी कुछ बेचैन सी लग रही थी। आधी रात को जब पायल ने शिवानी को दूसरे कमरे में जाने के लिए कहा तो शिवानी ने कह दिया कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए वह इसी कमरे में पायल के साथ ही आराम करना चाहती है।

सुबह उठने पर शिवानी की तबीयत काफी खराब थी। उसे लगातार चक्कर आते जा रहे थे। उसे महसूस हो रहा था कि जैसे कोई उसका गला दबाए जा रहा है। उसके सहयोगी उसे एक डॉक्टर के कलीनिक पर ले गए। डॉक्टर ने शिवानी का चैकअप करके उसे कुछ दवाई दे दी और वे वापिस होटल में आ गए। दवाई खा लेने के बाद भी शिवानी की तबीयत में कोई सुधार नहीं हुआ। इस कारण उनकी मित्र मंडली ने अपनी यात्रा के शेष प्रोग्राम को स्थगित कर दिया और वापिस अपने घरों की ओर लौट जाने की तैयारी शुरू कर दी। अपने घर पर आ कर भी शिवानी की तबीयत काफी खराब रहने लग गई। अब उसे डर लगने लग गया। डर के मारे उसे रातों को नींद आना भी बंद हो गई। उसके मन की बेचैनी अत्यधिक बढ़ती चली गई। अब उसे भयानक सपने आना शुरू हो गए। सपने में उसके साथ कोई अनजाना भयंकर सा आदमी ज़ोर-जबरदस्ती करता हुआ महसूस होता। इसके साथ उसे हर समय चक्कर आने भी शुरू हो गये। कई बार वह चक्कर खा कर गिर पड़ती और बेसुध हो जाती। अब जब वह अपने बेड पर सोने की कोशिश करती तो उस समय उसे ऐसा महसूस होता कि जैसे कोई विशेष आकृति वाला व्यक्ति उसे मारने के लिए दौड़ा आ रहा है। ऐसी हालत में वह एकदम से चिल्ला कर बिस्तर से उठ कर बाहर की ओर भाग लेती तथा फिर चक्कर खा कर गिर पड़ती। दिन-ब-दिन उसकी हालत बिगड़ती चली जा रही थी।

शिवानी की ऐसी परेशानी को देखकर उसके परिजन उसे अपने शहर में ही एक तान्त्रिक के पास ले गये। उस तान्त्रिक ने शिवानी को झाड़ा लगाया और फिर उसके घर वालों को कह दिया कि 'इस पर किसी ने बहुत बड़ा जादू टोना करवाया हुआ है, यह जादू-टोने का असर ही इसे घर में चैन से बैठने नहीं देता।' तान्त्रिक ने जादू-टोने के बचाव के लिए शिवानी के गले में डालने के लिए एक ताबीज दे दिया और दो दिनों तक तो शिवानी को कुछ आराम रहा परन्तु तीसरे दिन से शिवानी की हालत और अधिक बिगड़ती चली गई। परेशान हो कर शिवानी के परिजन उसे एक के बाद एक अनेकों बाबाओं, तान्त्रिकों, मुल्लाओं, पीर के भगतों तथा बाला जी की चौकियों पर ले कर जाते रहे। इतने सब प्रयत्न करने के बाद भी शिवानी की हालत में कोई सुधार नहीं आ सका। अन्त में उनके एक परिचित ने, जो कि तर्कशील सोसायटी द्वारा किये जाने वाले जनहित के कार्यों से भली-भांति परिचित था, मेरा पता दे कर उन्हें मेरे पास मनोरोग परामर्श केन्द्र में भेज दिया। मैंने पहले तो शिवानी के मां-बाप से और फिर शिवानी से उसकी सारी परेशानी के बारे में संपूर्ण तौर पर जानकारी प्राप्त की। बाद में मैंने शिवानी की मनोवैज्ञानिक काउंसलिंग कर के उसके अवचेतन मन में बैठे हुए भय को दूर किया। जब शिवानी को सम्मोहक नींद से जगाया गया तो वह अपने आप को एकदम से तंदरुस्त महसूस कर रही थी। उसके बाद उसे दो बार फिर से परामर्श केन्द्र में बुला कर मनोवैज्ञानिक ढंग से उसके मनोबल को बढ़ाया गया। उसके पश्चात् शिवानी को कभी कोई भी परेशानी नहीं हुई।

उसकी परेशानी के कारण क्या थे...?

शिवानी के मां-बाप काफी अमीर थे। शहरी उच्च-मध्यम वर्ग के अधिकतर लोगों की भांति उनका परिवार भी एक प्रकार मानसिक द्वन्द्व का शिकार था। एक तरफ तो वे लोग विज्ञान एवं तकनीक की सभी प्रकार की सुविधाओं का खुला उपभोग करते थे, वहीं पर दूसरी ओर वैचारिक स्तर पर अंधविश्वासों से ग्रस्त थे। इसके साथ ही आस्थावादी होने के कारण वे देवी-देवताओं के वरदान एवं कोपभाजन में पूर्ण तौर पर विश्वास रखते थे। उनके मनों में तीर्थ यात्रा करने से अच्छे फल प्राप्त करने की अभिलाषा गहराई से

बैठी हुई थी। साथ ही उनके मन में यह डर भी समाया हुआ था कि यदि इन्सान तीर्थ यात्रा के दौरान तीर्थों पर कोई पापकर्म करे तो देवता गण उस व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए पाप की भयानक सजा भी दे दिया करते हैं।

पुष्कर तीर्थ की यात्रा के दौरान जब शिवानी ने वहां के मंदिरों के पुजारियों द्वारा पुष्कर तीर्थ के इतिहास अथवा मिथिहास के बारे में बातें सुनीं कि 'पुष्कर तीर्थ को सभी तीर्थों का गुरू माना जाता है तथा सभी तीर्थों की यात्रा का फल पुष्कर स्नान एवं दर्शन से ही मिल जाता है।' उनकी मित्र मंडली ने पुष्कर में अनेकों मंदिरों के दर्शन किये। मंदिरों के अधिकांश पुजारियों ने उन्हें पुण्य कर्म करने से अच्छे फल मिलने तथा पाप कर्म करने से व्यक्ति को जीवन में अत्यंत कष्ट भोगने तथा मृत्योपरांत भी मोक्ष न मिलने तथा नरक कुण्ड में डाले जाने के बारे में ही प्रवचन सुनाए थे। ऐसे प्रवचन सुनने के बाद शिवानी ने भावुक मन में पुष्कर तीर्थ पर होटल में अपने मित्र अजय के साथ जो रंगरलियां मनाई थीं, उनका बुरा प्रभाव उसके अवचेतन मन में एक भयानक दहशत के रूप में बैठ गया। इस यात्रा पर आने से पूर्व भी अपने शहर में भी वह अपने इस मित्र अजय के साथ कई बार कोई न कोई बहाना बना कर किसी न किसी होटल में शारीरिक संबंध बना चुकी थी। वह अपने शहर में तथा जयपुर के एक होटल में अपने मित्र के साथ बनाए गए अपने शारीरिक संबंधों को वह केवल एक मनोरंजन मात्र ही मानती थी। क्योंकि शारीरिक संबंध बनाते समय वे सजग रहते थे और गर्भनिरोधकों का इस्तेमाल कर लिया करते थे। परन्तु अब पुष्कर जैसे तीर्थ स्थान पर वही क्रिया दोहराने पर अत्यधिक आस्थावादी एवं धर्मविश्वासी होने के कारण उसके भावुक मन में भयंकर अपराध बोध बैठ गया, और वह मानसिक तौर पर अत्यंत परेशान हो गई। उसी अपराध बोध के चलते ही वह पुष्कर में ही परेशान हो उठी थी, परन्तु बाद में घर पर आ कर ज्यों-ज्यों उसके मन में तीर्थ स्थान पर किये गए अपने कृत्य की याद ताजा हो उठती त्यों-त्यों वह और अधिक परेशान हो जाती। बाबाओं द्वारा 'भूत-प्रेत का साया' तथा किसी द्वारा 'किया कराया' का डर बिठा देने पर उसके मन में यह दहशत और अधिक बढ़ती चली गई। मैंने मनोवैज्ञानिक ढंग से काऊंसलिंग के द्वारा उसके अवचेतन मन में से इस अपराध बोध को पूरी तरह से निकाल दिया और आगे से उसे अपने जीवन में सामाजिक मर्यादा में रह कर अपना जीवन व्यतीत करने के निर्देश दिये। उसके बाद उसे कभी कोई परेशानी नहीं हुई।

नोट :-यह एक सत्य कथा है, परिस्थितिवश पात्रों के नाम बदल दिए गए हैं।

शेष पृष्ठ 24 का

क्रांति यानि इंकलाब के साथ साथ आजादी के बारे में भगत सिंह कहते हैं कि ''वह पूर्ण स्वतंत्रता का नाम है जिसमें लोग आपस में घुल-मिलकर रहेंगे और दिमागी गुलामी से भी आजाद हो जायेंगे। वे आगे कहते हैं कि क्रांतिकारी समाज की स्थापना होने के बाद धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास और पाखंडों व धर्मांधता का विनाश हो जाएगा और सब धर्म के लोग मिलजुल कर रहेंगे, कोई किसी पर अत्याचार नहीं करेगा।''

क्रांति यानी इंकलाब के अर्थ जानने के बाद अब यह हमारा नैतिक और क्रांतिकारी कर्तव्य है कि हम भगत सिंह के विचारों को लेकर, क्रांति से उनकी क्या मुराद थी, इस बात को लेकर किसानों, मजदूरों, नौजवानों के बीच गांवों, झोंपड़ियों और कारखानों में जाएं और वहां रहने वाले लोगों को क्रांति के लिए तैयार किए करें, आजादी के लिए तैयार करें और विदेशी गुलामी के खात्मे और विनाश के लिए तैयार करें।

क्योंकि हमने आजादी 1947 में प्राप्त कर ली थी मगर आज हम फिर से साम्राज्यवादी ताकतों और देशी-विदेशी धन्ना सेठों की गुलामी के शिकार हो गए हैं। हमारी सरकार ने जनता से उसके अधिकार छीन लिए हैं और हमारे ऊपर और हमारे देश की जनता के ऊपर, पैसे वालों के कानून थोप दिए हैं। हमें फिर से उदारीकरण और निजीकरण के कानूनों को थोप कर हमें फिर से गुलाम बना दिया गया है। अब हमें इस नई गुलामी को दूर करने के लिए, भगत सिंह और उनके साथियों के विचारों को लेकर एक बार पुनः जनता के बीच में जाना पड़ेगा और वहां क्रांति के लिए यानी समाजवादी क्रांति के लिए और नए समाज व्यवस्था की रचना के लिए किसानों मजदूरों को तैयार करना होगा।

''इंक्लाब जिंदाबाद''।

सामाजिक कुरीतियों से लड़ने और शिक्षा का अलख जगाने वाली भारत की पहली शिक्षिका – सावित्रीबाई फुले

सावित्रीबाई फुले का जन्म उस समय हुआ जब भारत अंग्रेजों का गुलाम था। उस समय भारत के आम लोगों के लिए शिक्षा बहुत दूर की चीज़ थी। ग़रीब व नीची जाति के लोगों और लड़कियों के पढ़ने–लिखने की बात तो सपने में भी नहीं सोची जा सकती थी। बाल–विवाह, सती–प्रथा (औरतों को उनके पतियों की मौत के बाद चिता पर ज़िन्दा ही जला दिया जाता था), छुआ–छूत जैसी सामाजिक बुराइयों ने समाज में गहराई तक जड़ें जमा रखी थीं। खुद सावित्रीबाई का विवाह 9 साल की ही उम्र में हो गया था। तब उनके पति ज्योतिराव फुले केवल 13 साल के थे। ज्योतिराव को ईसाई मिशनरी स्कूलों में पढ़ने का मौका मिला था। वे शिक्षा के महत्त्व को समझने लगे थे। उन पर बराबरी, आज़ादी और भाईचारे के विचारों और आन्दोलनों का भी गहरा प्रभाव पड़ा। उनके साथ रहते हुए और उनकी प्रेरणा से सावित्री बाई ने शिक्षा की जरूरत को समझा और पूरे लगन से शिक्षा ग्रहण की। पर वह ज्ञानी बनकर बैठ नहीं गयीं। समाज में जिन लोगों के लिए शिक्षा के दरवाज़े बन्द थे उन्हें शिक्षित करने का उन्होंने बीड़ा उठाया। उस समय की प्रचलित प्रथाओं और शिक्षा के विरोधियों की उन्होंने जरा भी परवाह न की। एक ऐसे समय में जब लड़कियों का पढ़ना ही जुर्म था उन्होंने लड़कियों के स्कूल खोले। पैसे की तंगी के कारण लड़कियों को बीच में ही स्कूल न छोड़ना पड़े इसके लिए उन्होंने वज़ीफा देने की व्यवस्था भी की। पर समाज के ऊँचे कहे जाने वाले लोग जो शिक्षा पर केवल अपना अधिकार समझते थे, उन्हें लड़कियों का पढ़ना बिल्कुल मंजूर न था। वे सावित्रीबाई का हर कदम पर विरोध करते थे। जब वे स्कूल में पढ़ाने जाती तो उन्हें अपने झोले में एक और साड़ी रखनी पड़ती थी। जानते हो क्यों! क्योंकि रास्ते में ये ‘ऊँचे’ लोग उन पर गोबर, ढेले और कीचड़ फेंककर पहनी हुई साड़ी को गन्दी कर देते। लड़कियों को शिक्षित करने के लिए वे उन्हें सबक़ सिखाना चाहते थे। वे सोचते थे कि ऐसा करके वे उनकी हिम्मत को तोड़ देंगे। लेकिन वे रत्तीभर भी नहीं डिगीं और सारे विरोध के बावजूद शिक्षा के प्रसार में और हर तरह की सामाजिक कुरीतियों के ख़िलाफ़ डटी रहीं। उन्होंने ज्योतिराव फुले के साथ मिलकर लड़कियों की शिक्षा के लिए एक के बाद एक 18 स्कूल खोले। सबसे पहला स्कूल 1848 में पुणे (महाराष्ट्र) के भिड़ेवाड़ा में खुला। उसके बाद 5 सालों के भीतर ही उन दोनों ने 17 और स्कूल खोले। उनके रास्ते में तमाम तरह की अड़चनें आयी, जान तक पर बन आयी पर उन्हें अपने जैसे लोगों का सहयोग भी मिला। ऐसे लोगों में सबसे पहले फातिमा शेख का नाम आता है। फातिमा शेख और उनके पूरे परिवार ने इस काम से सावित्रीबाई और ज्योतिराव फुले का साथ दिया। जब सावित्रीबाई और ज्योतिबा फुले को समाज के ऊँचे और बड़े लोगों के विरोध के चलते अपना घर छोड़ना पड़ा तब फ़ातिमा शेख़ के भाई उस्मान शेख ने ही उन्हें अपने घर में जगह दी थी। वहीं लड़कियों के पहले स्कूल की स्थापना हुई। यह वह समय था जब अंग्रेजों ने ‘फूट डालो और राज करो’ की नीति को बड़े ज़ोर–शोर के साथ आगे बढ़ाया और हिन्दू और मुसलमानों के बीच नफ़रत का जहर फैलाना शुरू कर दिया लेकिन सावित्रीबाई और फ़ातिमा शेख पर अंग्रेज़ों की इस चाल का कोई असर न पड़ा। उनकी मित्रता बनी रही और उन्होंने एकसाथ मिलकर काम किया। आज जबकि लड़कियों को ऊँची शिक्षा पाने का अवसर मिला हुआ है, बहुतों को पाइलट, डाक्टर, वकील, जज और अध्यापिका तथा वैज्ञानिक तक बनने का अवसर प्राप्त है तब हमें यह अवश्य जानना चाहिए कि शिक्षा की डगर पहले इतनी आसान नहीं थी जैसी कि आज दिखने में लगती है। इसके लिए सावित्रीबाई और फ़ातिमा शेख जैसे लोगों को अनेक कुर्बानियाँ देनी पड़ी थीं। लड़कियों को शिक्षा मिल सके इसके लिए उन्हें न जाने कितने अपमान सहने पड़े। उन्हें समाज के ऐसे तमाम लोगों का बुरा बर्ताव झेलना पड़ा जो चाहते थे कि सड़ी–गली परम्पराएँ और रूढ़ियाँ जैसे की तैसे बनी रहें। पर उन्होंने न हार मानी और न कभी उनके कदम रुके।



सावित्रीबाई ने केवल लड़कियों का स्कूल ही नहीं खोला, प्रौढ़ (बड़ी उम्र की औरतों और आदमियों के लिए)

पाठशालाएँ भी खोलीं। विधवा स्त्रियों के लिए उन्होंने विधवा–आवास (होस्टल) बनवाये। उस समय प्रचलित मान्यताओं के विरोध में जाकर उन्होंने विधवा–विवाह को बढ़ावा दिया। इतना ही नहीं उन्होंने विधवा स्त्रियों के सिर मुड़वाने के ख़िलाफ़ भी संघर्ष चलाया। वे अपनी पूरी जिन्दगी ऐसी कुप्रथाओं के विरुद्ध लड़ती रहीं। जाति व धर्म के भेदभाव और दिखावे की वे हमेशा कट्टर विरोधी रहीं। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उन्होंने शुरूआत से ही ऐसी शिक्षा पर ज़ोर दिया जो हर चीज़ के बारे में 'कब–क्यों–कैसे' समझना सिखाये। अन्धविश्वासों से छुटकारा पाना सिखाये। आज शिक्षा उतनी मुश्किल नहीं लगती लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि यह बात 174 वर्ष पहले की है। उस समय शिक्षा केवल समाज के धनी–मानी और ऊँची हैसियत के बहुत थोड़े से लोगों तक सीमित थी। बाकी लोगों के लिए पढ़ना–लिखना एक बुराई मानी जाती थी। यदि कोई ऐसा करता तो उसे समाज की सज़ा भी भुगतनी पड़ती। ऐसे समय में नीचे के मामूली लोगों तक शिक्षा पहुँचाना बड़े साहस का काम था। स्त्रियाँ नीचे के इन मामूली लोगों से भी नीचे की कोटि में गिनी जाती थीं। इसलिए उनकी शिक्षा के लिए समाज से टकराने का काम वास्तव में वही कर सकता था जो सच्चे अर्थों में समाज को आगे बढ़ाना, ऊपर उठाना चाहता हो।

3 जनवरी 1831 को सतारा ज़िले के नायगाँव में जन्मी सावित्रीबाई अपनी पति ज्योतिराव फुले की मृत्यु के बाद भी अन्तिम सांस तक समाज और आम लोगों के लिए काम करती रहीं। 1897 में प्लेग महामारी फैली। रोगियों की देखभाल के लिए उन्होंने क्लिनिक बनाने का इन्तज़ाम किया। प्लेग से पीड़ित रोगियों की सेवा करते हुए वे स्वयं प्लेग से संक्रमित हो गयीं और **10 मार्च 1897** को उन्होंने अन्तिम सांस ली। सावित्रीबाई फुले ने अपने कामों के ज़रिये यह सिखाया कि शिक्षा का समाज के सभी लोगों के लिए कितना अधिक महत्त्व है। उन्होंने शिक्षा की जरूरत पर कविताएँ भी लिखीं। 'काव्य फूले' में उनकी ये कवितायें संकलित हैं।

सावित्रीबाई फुले ने जिस तरह शिक्षा और ज्ञान प्रसार के महत्त्वपूर्ण काम को बिना रुके और बिना थके लगातार जारी रखा, जैसी बहादुरी और हिम्मत के साथ सभी अड़चनों और बाधाओं का मुकाबला किया उसे देखते हुए लगता है कि शिक्षक दिवस मनाने के लिए उनके जन्म दिवस 3 जनवरी से बेहतर कोई और दिन, कोई और तारीख नहीं हो सकती थी।

(स्त्रोत : 'कोंपल' जनवरी–मार्च 2021)

खोज खबर (अनुसंधान)

बैड कोलेस्ट्राल को कम करने में गेमचेंजर साबित होगी नई वैक्सीन

अब बैड अथवा लो डेंसिटी लाइपोप्रोटीन (एल. डी.एल.) को कम करने के लिए जल्द ही महंगी दवाओं से छुटकारा मिल सकता है। जी हां! शोधकर्त्ताओं ने एलडीएल कोलेस्ट्राल को कम करने के लिए नई किफायती वैक्सीन विकसित कर ली है और यह कोलेस्ट्राल से पीड़ित लोगों के लिए गेमचेंजर साबित होगी। बैड कोलेस्ट्राल एक गंदा पदार्थ है, जो नसों को ब्लाक कर देता है और वहीं हाई डेंसिटी लाइपोप्रोटीन (एल.डी.एल.) अथवा हाई कोलेस्ट्राल के कारण हृदय रोग और स्ट्रोक होने का खतरा रहता है। एनपीजे वैक्सीन्स जर्नल में प्रकाशित अध्ययन में बताया गया कि नई वैक्सीन एल.डी.एल. कोलेस्ट्राल पर पी.सी.एस. के इनहिबिटर्स नामक महंगी दवाई की तरह ही प्रभावी रही। यूनिवर्सिटी आफ न्यू मैक्सिको (यूएनएम) के मालिक्यूलर जेनेटिक्स एंड माइक्रोबायोलाजी विभाग के प्रोफेसर ब्रायस चाकेरियन ने बताया कि वर्तमान में कोलेस्ट्राल का इलाज बहुत महंगा है। किफायती वैक्सीन को विकसित करने का उद्देश्य आम लोगों को सस्ता इलाज मुहैया कराना है। चाकेरियन ने बताया कि जानवरों को वैक्सीन देने पर उनके कोलेस्ट्राल के स्तर में 30 प्रतिशत तक भारी कमी आई। इससे हृदय रोग का खतरा भी कम हुआ। गत 10 वर्ष से इस वैक्सीन का चूहों और बंदरों पर परीक्षण किया जा रहा और इसका परिणाम उत्साहजनक रहा है। अब जल्द ही मनुष्य पर वैक्सीन का क्लीनिकल ट्रायल करने की तैयारी है। सरल व अपेक्षाकृत सस्ते बैक्टीरिया से बने होने के कारण यह वैक्सीन 100 डालर प्रति डोज से भी सस्ती हो सकती है। वैक्सीन की एक डोज एक साल तक प्रभावी रहेगी।

(आइएएनएस)

साभार : दैनिक जागरण (21-12-2023)

‘ड्रीमलैण्ड’ (स्वप्न-लोक) की भूमिका

- शहीद भगत सिंह

(क्रान्तिकारियों द्वारा छेड़ी गई आजादी की लड़ाई में कुछ जाने-माने वीरों में लाला ‘रामसरन दास’ उल्लेखनीय हैं। ये 1907 में शहीद भगत सिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह के साथ इस जंग की राह पर चले और कभी रुके नहीं। बाद में पकड़े गए, उम्र कैद हुई। कैद काटकर आए तो क्रान्तिकारियों की मदद करने लगे। लाहौर षड्यंत्र केस में उन्हें फंसाया गया। पांच साल कैद में रहे और इसी बीच अंग्रेजी में कविता-लेखन किया। ‘ड्रीमलैण्ड’ उनका एक अंग्रेजी काव्य संग्रह है, जिसकी भूमिका लाला रामसरन के अनुरोध पर भगत सिंह ने सेंट्रल जेल, लाहौर में 15 जनवरी, 1931 को अंग्रेजी में ही लिखी थी। बाद में उस भूमिका का हिन्दी में ‘स्वप्न लोक’ के नाम से अनुवाद किया गया। इस समीक्षात्मक भूमिका से भगत सिंह की न केवल साहित्यिक समझ और संवेदना का पता चलता है बल्कि उनकी उदात्त आलोचना दृष्टि का भी परिचय मिलता है। लेखक की यह भूमिका लाला रामसरन दास से प्राप्त हुई।)

मेरे लायक दोस्त लाला रामसरन दास ने मुझसे अपनी पुस्तक ‘ड्रीमलैण्ड’ (स्वप्न-लोक) की भूमिका लिखने के लिए कहा है। मैं न तो कवि हूँ, न साहित्यकार, न मैं पत्रकार हूँ और न ही आलोचक। इसलिए मैं उनकी इस माँग का कोई औचित्य नहीं खोज पा रहा हूँ। लेकिन मैं जिन परिस्थितियों में हूँ, वे मुझे लेखक से इस मामले पर बहस अथवा तर्क-वितर्क करने की सुविधा प्रदान नहीं करतीं और इस प्रकार मेरे सामने इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं छोड़तीं कि मैं अपने मित्र की इच्छा पूरी करूँ।

चूँकि मैं कवि नहीं हूँ इसलिए मैं इस पर उस दृष्टिकोण से बहस करने नहीं जा रहा हूँ। मुझे छन्द और तुक का ज्ञान बिल्कुल नहीं है और मैं नहीं जानता कि तुक के मानदण्डों से परखने पर यह सही साबित होगी या नहीं। साहित्यकार न होने के नाते राष्ट्र के साहित्य में उसे उचित स्थान दिलाने के दृष्टिकोण से भी मैं उस पर बहस करने नहीं जा रहा हूँ।

एक राजनैतिक कार्यकर्ता होने के नाते मैं अधिक-से-अधिक इस पर उसी दृष्टिकोण से बात कर सकता हूँ। लेकिन यहाँ भी एक बात मेरे काम को करीब-करीब असम्भव बना देती है क्योंकि मैं पुस्तक के विषय के बारे में लेखक से सहमत नहीं हूँ। मैं अपने मित्र से सभी मामलों पर एकमत नहीं हूँ। वे इस बात को जानते थे कि मैं बहुत-से बुनियादी प्रश्नों पर उनसे मतभेद रखता हूँ। इसलिए मैं जो लिखने जा रहा हूँ वह किसी भी हालत में पुस्तक की भूमिका नहीं होगी। वह बहुत कुछ उसकी आलोचना हो सकती है और इसलिए उसका स्थान पुस्तक के अन्त में होगा, आरम्भ में नहीं।

राजनैतिक क्षेत्र में ‘ड्रीमलैण्ड’ का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। मौजूदा स्थिति में यह आन्दोलन की एक महत्त्वपूर्ण कमी को पूरा कर रही है। दरअसल आधुनिक इतिहास में किसी प्रकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रखने वाला हर राजनैतिक आन्दोलन आदर्शहीन रहा है। क्रान्तिकारी आन्दोलन भी इसका अपवाद नहीं है। एक गदर पार्टी को छोड़कर, जिसने अमरीकी ढंग की सरकार से प्रेरित होकर स्पष्ट कहा था कि वह भारत की मौजूदा सरकार को हटाकर उसके स्थान पर प्रजातान्त्रिक प्रकार की सरकार स्थापित करना चाहती है। अपनी पूरी कोशिशों के बावजूद मूझे ऐसी एक भी क्रान्तिकारी पार्टी नहीं मिली जिसे इस बात का स्पष्ट ज्ञान हो कि वह किसी बात के लिए लड़ रही है। अन्य सभी पार्टियों में जो लोग थे वे मात्र इतना जानते थे कि उन्हें विदेशी शासकों से लड़ना है। यह विचार अपने में बहुत सराहनीय है लेकिन उसे क्रान्तिकारी विचार नहीं कहा जा सकता। हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि क्रान्ति का मतलब मात्र उथल-पुथल या एक खूनी संघर्ष नहीं है। जब हम क्रान्ति की बात करते हैं तो उसमें मौजूदा हालात (अर्थात् सरकार) को पूरी तरह ध्वंस करने के बाद समाज के व्यवस्थित पुनगर्ठन के कार्यक्रम की बात निहित है।

राजनैतिक क्षेत्र में उदारतावादी लोग (लिबरल्स) मौजूदा सरकार के नीचे रहकर ही कुछ सुधार चाहते थे, जबकि उग्रवादी लोगों की माँगें कुछ अधिक थीं और वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उग्र उपायों से काम लेने के लिए तैयार थे। क्रान्तिकारी हमेशा उग्र उपायों के हक में रहे हैं और उनका विचार रहा है-विदेशी आधिपत्य को उखाड़

फेंकना। निस्सन्देह इनमें कुछ ऐसे लोग भी थे जो इन उग्र उपायों से कुछ और सुधार प्राप्त करना चाहते थे। इन सभी आन्दोलनों को सही अर्थों में क्रान्तिकारी नहीं कहा जा सकता। लेकिन लाला राम सरन दास पहिले क्रान्तिकारी हैं जिन्हें पंजाब में एक बंगाली फरार ने 1908 में औपचारिक तौर पर (क्रान्तिकारी पार्टी में) भर्ती किया था। तब से वे लगातार क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्पर्क में रहे और अन्त में वे गदर पार्टी में भर्ती हो गए। लेकिन आन्दोलन के आदर्श के बारे में उन लोगों के (1908 के क्रान्तिकारियों के) जो पुराने विचार थे उनका उन्होंने परित्याग नहीं किया। पुस्तक की खूबसूरती और उसके मूल्य को बढ़ाने वाली एक और भी दिलचस्प बात है। लाला रामसरन दास को 1915 में मृत्यु-दण्ड मिला था। बाद में वह सजा घटाकर आजीवन कारावास कर दी गई थी। आज स्वयं फाँसी को कोठरी में बैठकर अपने पाठकों से साधिकार कह सकता हूँ कि आजीवन कारावास मौत की बनिस्बत (अपेक्षाकृत) कहीं अधिक कठोर दण्ड है। लाला रामसरन दास को पूरे चौदह साल जेल में बिताने पड़े थे। उन्होंने यह काव्य दक्षिण की किसी जेल में लिखा था। लेखक की उस समय की मनोदशा और मानसिक संघर्ष की काव्य पर स्पष्ट छाप है और वह इसे और भी सुन्दर तथा दिलचस्प बना देती है। इस काव्य को लिखने का निश्चय करने से पहले वह (लेखक) किन्हीं अवसादपूर्ण मनोभावों के विरुद्ध कठिन संघर्ष करता रहा है। ऐसे समय पर जब बहुत से साथी आश्वासन (अण्डरटेकिंग) देकर छूट गए थे और सबके सामने-उसके सामने भी बड़े-बड़े प्रलोभन थे। जब पत्नी तथा बच्चों की मधुर एवं दुखद स्मृतियाँ मुक्ति-लाभ की प्रबल आकांक्षा को और अधिक बल दे रही थीं, तब उसे इन सब बातों के पस्त करने वाले प्रभाव के खिलाफ कठिन संघर्ष करना पड़ा था और उसने अपना ध्यान इस (काव्य-रचना) की ओर मोड़ दिया था। यही कारण है कि काव्य के प्रारम्भिक पदों में हमें इस प्रकार का आकस्मिक भावोद्वेग मिलता है-

"Wife, Children, Friends that me surround were poisionous snakes all around."

''पत्नी, पुत्र मित्रगण मेरे
जो मुझको रहते हैं घेरे
विषधर नाग सदृश थे ये सब
देते रहते चहुँदिशि फेरे।''

वह आरम्भ में दर्शन की बात करता है। यह दर्शन बंगाल तथा पंजाब के सभी क्रान्तिकारी आन्दोलनों की रीढ़ है। मेरा लेखक से इस प्वाइण्ट पर बहुत बड़ा मतभेद है। उसकी विश्व की व्याख्या हेतुवादी एवं पारलौकिक (मेटाफिजिकल) है; जबकि मैं एक भौतिकवादी हूँ और गोचर जगत की मेरी व्याख्या कारण सम्बद्ध होगी। फिर भी यह रचना किसी हालत में असामयिक नहीं है। हमारे देश में जो साधारण विचार प्रचलित हैं वे लेखक द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से अधिक मेल खाते हैं। उस समय की अपनी उदासी की मनोदशा से लड़ने के उद्देश्य से उसने प्रार्थना का मार्ग अपनाया है। यह इस बात से स्पष्ट है कि पुस्तक का सारा का सारा प्रारम्भिक भाग ईश्वर, उसकी स्तुति और उसकी परिभाषा आदि को अर्पित है। ईश्वर पर विश्वास रहस्यवाद का परिणाम है और रहस्यवाद मानसिक अवसाद की स्वाभाविक उपज है। यह जगत 'माया' है, या 'मिथ्या' है, एक स्वप्न या कल्पना है-ऐसे विचारों को रहस्यवाद कहते हैं। इन विचारों को पुराने जमाने के शंकराचार्य तथा उन जैसे अन्य दार्शनिकों ने जन्म दिया और विकसित किया था। लेकिन भौतिकवादी दर्शन के अन्तर्गत इस प्रकार की विचारधारा के लिए कोई स्थान नहीं है। फिर भी लेखक का यह रहस्यवाद किसी भी रूप में हीन, ओछा या खेदोत्पादक नहीं है। उसका अपना सौन्दर्य एवं आकर्षण है। उसके विचार उत्साहवर्धक हैं। देखिए-

"Be a foundation stone obscure,
And on thy brest Cheerfully bear
The architecture vast and huge,
In suffering find true refuge
Envy not the plastered top-stone
on which all worldly Praise is thrown" etc. etc.

निगाह से ओझल छिपे हुए बुनियाद के पत्थर बनो,
और अपने सीने पर सहर्ष बर्दाश्त करो
विशाल और भारी इमारत को बोझ
कष्ट सहन में अनुभव करो सच्ची शरण (सन्तोष)
करो न ईर्ष्या द्वार पर जड़े पत्थर से
जिस पर उँडेलता है जग सारी प्रशंसा।

अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं साधिकार कह सकता हूँ कि गुप्त कार्यों में, जब मनुष्य को लगातार

खतरे का जीवन बिताना पड़ता है–'आशा रहित और निर्भय', हमेशा 'अजानी, सम्मान रहित, संगीतहीन', मृत्यु के लिए तत्पर–तब ऐसे अवसरों पर व्यक्तिगत प्रलोभनों और इच्छाओं से वह इस प्रकार के रहस्यवाद के सहारे लड़ सकता है और ऐसा रहस्यवाद किसी प्रकार से भी पस्ती या शिथिलता उत्पन्न करने वाला नहीं होता।

लेखक ने एक क्रान्तिकारी की मनोवृत्ति का वर्णन किया है। लाला रामसरन दास एक ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी के सदस्य थे जिसे बहुत-से हिंसक कामों के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था। लेकिन इससे यह साबित नहीं होता कि क्रान्तिकारी लोग बरबादी और तबाही में सुख अनुभव करने वाले खून के प्यासे दानव होते हैं देखिए–

''यदि आवश्यकता हो तो ऊपर से उग्र एवं भयानक बनो,

लेकिन अपने दिल में हमेशा नम्र रहो

फुफकारो यदि आवश्यकता हो, किन्तु काटो मत,

दिल से प्यार करो और ऊपर से लड़ो।''

निर्माण के लिए ध्वंस आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। क्रान्तिकारियों को उसे अपने कार्यक्रम के आवश्यक अंग के रूप में अपनाना पड़ता है और हिंसा तथा अहिंसा के दर्शन को उपर्युक्त पंक्तियों में बहुत खूबसूरती के साथ वर्णन किया गया है। लेनिन ने एक बार गोर्की से कहा था कि ऐसा संगीत सुनने को नहीं मिला जो शरीर के तन्तुओं में प्राण फूँक दे और यह कि ऐसा संगीत सुनकर उनकी इच्छा कलाकारों के सिर थपथपाने की होती है। उन्होंने आगे कहा, ''लेकिन यह समय सिर थपथपाने का नहीं है। इस समय तो हाथों का काम सिरों को तोड़ने का है, यद्यपि हमारा अन्तिम उद्देश्य हर प्रकार की हिंसा को समाप्त करना है।'' जब क्रान्तिकारियों को एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में हिंसात्मक उपायों से काम लेना पड़ता है तो वे भी ठीक ऐसा भी अनुभव करते हैं।

इसके बाद लेखक ने आपस में टकराने वाले विभिन्न धर्मों की समस्या को लिया है। वह सभी धर्मों में तालमेल बिठलाने की कोशिश करता है, जैसा कि प्राय: सभी राष्ट्रवादी करते हैं। प्रश्न को सुलझाने का यह तरीका लम्बा और गोलमोल है और जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं इसे कार्ल मार्क्स के एक वाक्य में यह कहकर रद्द कर दूँगा कि ''धर्म जनता के लिए अफीम है।''

अन्त में उसकी कविता का सबसे महत्त्वपूर्ण वह हिस्सा आता है जहाँ उसने भावी समाज के बारे में लिखा है, जिस समाज की स्थापना के लिए हम सब लालायित हैं। लेकिन मैं आरम्भ में ही एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। 'ड्रीमलैण्ड' सचमुच का एक स्वप्न-लोक है। लेखक ने बड़े ही निष्कपट भाव से पुस्तक के शीर्षक द्वारा इसे स्वीकार कर लिया है। वह इस विषय पर कोई वैज्ञानिक थीसिस लिखने का दावा नहीं करता। 'ड्रीमलैण्ड' (स्वप्न-लोक) शीर्षक इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर देता है। लेकिन स्वप्न-लोकों की निश्चित रूप से सामाजिक प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सेन्ट साइमन, फूरिये और राबर्ट ओवेन और उनके सिद्धान्तों के अभाव में मार्क्सवादी वैज्ञानिक समाजवाद भी न होता। जब हमारे कार्यकर्ता अपने आन्दोलन के दर्शन को व्यवस्थित रूप देने और आन्दोलन के बारे में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण गढ़ने के महत्त्व को समझेंगे, उस समय यह पुस्तक उनके लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

मैंने यह बात मार्क की है कि लेखक की अभिव्यक्ति-शैली परिमार्जित नहीं है। अपने स्वप्नलोक का वर्णन करते समय लेखक मौजूदा समाज के विचारों से अछूता नहीं रह पाया है।

जरूरतमंदों को दान देना

भविष्य के समाज में अर्थात् कम्युनिस्ट समाज में जिसका हम निर्माण करना चाहते हैं, हम धर्मार्थ संस्थाएँ स्थापित करने नहीं जा रहे हैं, बल्कि उस समाज में न गरीब होंगे, न ज़रूरतमन्द, न दान देने वाले, न दान लेने वाले। इस असंगति के बावजूद लेखक ने प्रश्न को बड़ी खूबसूरती के साथ पेश किया है।

पुस्तक में लेखक ने समाज की जिस साधारण रूप-रेखा पर बहस की है वह बहुत कुछ वैसी ही है जैसी वैज्ञानिक समाजवाद की। लेकिन उसमें ऐसी बातें भी हैं जिनका विरोध या प्रतिवाद आवश्यक है या यूँ कहा जाए कि उनमें सुधार आवश्यक है। मिसाल के तौर पर 427वें पद के नीचे दी हुई टिप्पणी में वह लिखता है कि राजकर्मचारियों को अपनी रोजी कमाने के लिए प्रतिदिन चार घण्टे खेतों पर या कारखानों में काम करना चाहिए। लेकिन यह अव्यावहारिक तथा हवाई बात है। यह बात शायद आज की व्यवस्था में

राजकर्मचारियों को जो ऊँचा वेतन दिया जाता है, उसके खिलाफ प्रतिक्रिया की ही उपज है।

दरअसल बोल्शेविकों को भी यह स्वीकार करना पड़ा था कि दिमागी काम उतना ही उत्पादक श्रम है, जितना कि शारीरिक श्रम, और आने वाले समाज में जब विभिन्न तत्त्वों के आपसी सम्बन्धों का समायोजन समानता के आधार पर होगा तो उत्पादक और वितरक दोनों समान रूप से महत्त्वपूर्ण माने जाएंगे। आप एक नाविक से यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वह हर चौबीस घण्टे बाद अपना जहाज रोककर रोजी कमाने के लिए चार घण्टे काम करने चला जाएगा, या एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला और अपना प्रयोग (काम) छोड़कर खेत पर अपने काम का कोटा पूरा करने चला जाएगा। ये दोनों ही बहुत उत्पादक काम कर रहे हैं। समाजवादी समाज में इतने ही अन्तर की आशा की जाती है कि दिमागी काम करने वाला शारीरिक काम करने वाले से ऊँचा नहीं माना जाएगा।

नि:शुल्क शिक्षा के बारे में लाला रामसरन दास का विचार सचमुच ध्यान देने योग्य है और रूस में वहाँ की समाजवादी सरकार ने बहुत कुछ उसी प्रकार की पद्धति अपनाई है।

अपराध के बारे में उनकी बहस सचमुच बहुत आगे बढ़ी हुई विचारधारा है। अपराध (जुर्म) एक बहुत गम्भीर सामाजिक समस्या है जो बहुत सतर्क इलाज चाहती है। लेखक ने अपने जीवन का अच्छा भाग जेल में बिताया है। उसे अमली तजुर्बा है। एक स्थान पर उसने ठेठ जेल की शब्दावली का प्रयोग किया है जैसे हल्की मशक्कत, दरमियानी मशक्कत और सख्त मशक्कत आदि। सभी अन्य समाजवादियों की भाँति उसका सुझाव है दण्ड का आधार प्रतिशोध के बजाय सुधार का सिद्धान्त होना चाहिए। न्याय-विधान को परिचालित करने वाला सिद्धान्त दण्ड देना न होकर सुपथ पर लाना होना चाहिए और जेलों का रूप वास्तविक 'नरक' होने के बजाय सुधारालयों का हो। इस सम्बन्ध में पाठकों को चाहिए कि रूसी कारागार-व्यवस्था का अध्ययन करें।

सेनाओं पर बात करते समय उसने युद्धों के बारे में भी अपने विचार व्यक्ति किए है। मेरा मत है कि उस समय (भविष्य में) के विश्वकोश में युद्ध के बारे में बहुत कम सफे रहेंगे और युद्ध सामग्री अजायबघरों की शोभा बढ़ाएगी, क्योंकि उस समाज में युद्धों को जन्म देने वाले परस्पर विरोधी हित नहीं रह जाएंगे।

अधिक-से-अधिक हम यह कह सकते हैं कि युद्ध संक्रमण काल तक रहेंगे। यानी हम रूस का उदाहरण लें तो इस बात को अच्छी तरह समझ सकेंगे। वहाँ इस समय सर्वहारा वर्ग का अधिनाकयतन्त्र है। वे लोग समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं। तब तक के लिए पूँजीवादी समाज से अपनी रक्षा करने के लिए उन्हें एक सेना रखनी पड़ रही है। लेकिन उसके युद्ध-उद्देश्य भिन्न होंगे। क्रान्तिकारी सेनाएँ दूसरे देशों में जाएंगी-वहाँ की जनता पर शासन करने या उसे लूटने के लिए नहीं बल्कि शोषक शासकों को उनके सिंहासनों से नीचे गिराने के लिए, उनके खून चूसने वाले शोषण का अन्त करने के लिए और वहाँ की मेहनतकश जनता को मुक्ति दिलाने के लिए। लेकिन वहाँ हमारे जवानों को लड़ने के लिए उकसाने हेतु पुरानी राष्ट्रीय या जातीय घृणा नहीं होगी।

आज के सभी मुक्त विचारकों ने उस विषय पर अच्छा लिखा है और फौरी उद्देश्य है विश्व संघ; और लेखक ने उस विषय पर अच्छा लिखा है और तथाकथित 'लीग ऑफ नेशन्स' की आलोचना बड़ी सुन्दर है।

571वें (572) पद के नीचे दिए एक फुटनोट में लेखक ने संक्षेप में उपायों के प्रश्न को लिया है। वह कहता है, "इस प्रकार के राज्य शारीरिक हिंसात्मक क्रान्तियों द्वारा स्थापित नहीं किए जा सकते। वह समाज पर बाहर से थोपा नहीं जा सकता। उसे तो अन्दर से ही विकसित होना पड़ेगा। इसकी प्राप्ति धीरे-धीरे क्रमविकास की प्रक्रिया द्वारा और जनता को ऊपर बतलाई लाइन पर प्रशिक्षित करके हो सकती है", आदि। इस बयान में अपने में कोई असंगति नहीं है। यह बिल्कुल सही है। लेकिन पूरी तरह से उसकी व्याख्या न की जाने के कारण वह कुछ गलतफहमियाँ या उलझन पैदा कर सकता है। क्या इसका यह मतलब है कि लाला रामसरन दास को बल-प्रयोग की निरर्थकता का ज्ञान हो गया है? क्या वे अहिंसा के कट्टर समर्थक हो गए हैं? नहीं, इसका यह मतलब नहीं निकलता।

उपर्युक्त बयान का क्या मतलब है, आइए, उस पर थोड़ी रोशनी डालते चलें। अन्य किसी व्यक्ति की अपेक्षा क्रान्तिकारी इस बात को ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं कि समाजवादी समाज की स्थापना हिंसात्मक उपायों से नहीं हो

सकती बल्कि उसे अन्दर से ही प्रस्फुटित और विकसित होना चाहिए। लेखक का सुझाव है कि उपाय के रूप में केवल प्रशिक्षण से ही काम लेना चाहिए। लेकिन हर व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह से समझ सकता है कि यहाँ की मौजूदा सरकार, दरअसल सभी पूँजीवादी सरकारें इस प्रकार के प्रयासों की न सिर्फ सहायता नहीं करेंगी बल्कि इसके विपरीत निर्दयतापूर्वक उसका दमन करेंगी। तब उसके क्रमविकास से क्या हाथ लगेगा ? हम क्रान्तिकारी लोग सत्ता हथियाने और एक क्रान्तिकारी सरकार संगठित करने का प्रयास कर रहे हैं। उस सरकार को जनता को प्रशिक्षित करने के लिए अपने सभी साधनों को काम में लाना होगा, जैसा कि इस समय रूस में हो रहा है। पूँजीपतियों के हाथों से सत्ता छीनने के बाद रचनात्मक कार्य के लिए शान्तिपूर्ण उपाय काम में लाए जाएंगे और बाधाओं को कुचलने में शक्ति का प्रयोग किया जाएगा। यदि लेखक का यही अभिप्राय है तो हम उसके साथ हैं। और मुझे विश्वास है कि उसका यही मतलब है।

पुस्तक पर मैंने काफी विस्तार से लिखा है दरअसल मैंने उसकी आलोचना लिख डाली है। लेकिन मैं पुस्तक में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए कहने नहीं जा रहा हूँ, क्योंकि उसका एक ऐतिहासिक मूल्य है। 1914–15 के क्रान्तिकारियों के यही विचार थे।

मैं अपने नौजवानों के लिए खास तौर पर इस पुस्तक की सिफारिश करता हूँ, लेकिन एक चेतावनी के साथ। कृपया आँख मूँदकर इस पर अमल करने के लिए या इसमें जो कुछ लिखा है उसे वैसा ही मान लेने के लिए इसे न पढ़ें। इसे पढ़ें, इसकी आलोचना करें, इस पर सोचें और इसकी सहायता से स्वयं अपनी समझदारी बनाएँ।

साथियो! आगे बढ़ो

आगे बढ़ो
करो संघर्ष
अँधियारा छँटे
जीवन नया सिरजो
बस, यूँ कि टूटे बेड़ियाँ
बस, यूँ कि जीवन हँस उठे

मार्च–अप्रैल की कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

8 मार्च – अर्न्तराष्ट्रीय महिला दिवस

23 मार्च – शहीद दिवस (1931) शहीदे आज़म भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव ने देश की आज़ादी की खातिर आज के दिन ही हँसते–हँसते फाँसी का फंदा चूम लिया था। आज ही के दिन पंजाब के क्रान्तिकारी कवि अवतार 'पाश' को आतंकवादियों ने मार दिया था।

25 मार्च – क्रान्तिकारी पत्रकार, कलम के सिपाही गणेश शंकर विद्यार्थी आज ही के दिन साम्प्रदायिक दंगों को रोकने की कोशिश में शहीद हो गये थे। (1931)

29 मार्च – विश्व प्रसिद्ध महान क्रान्तिकारी लेखक मक्सिम गोर्की का जन्मदिवस (1868) भारत के प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष (1857) के नायक मंगल पाण्डे ने आज ही के दिन विद्रोह का बिगुल फूंका था।

8 अप्रैल (1857)– 1857 के स्वाधीनता संग्राम के प्रथम विद्रोही मंगल पाण्डे को ब्रिटिश हुकूमत द्वारा फाँसी।

8 अप्रैल (1929) – 'बहरों को सुनाने के लिए धमाके की जरूरत होती है', इस उद्घोष के साथ भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली की सेंट्रल असेम्बली में बम फेंका।

9 अप्रैल (1893) – महान लेखक राहुल सांकृत्यायन का जन्म दिवस

13 अप्रैल (1893) – जालिम रौलट ऐक्ट के विरोध में अमृतसर के जालियाँवाला बाग में शान्तिपूर्ण सभा कर रहे लोगों पर ब्रिटिश फौज के जनरल डायर ने अंधाधुंध गोलियाँ चलवाईं जिससे सैंकड़ों स्त्री–पुरुष व बच्चे मारे गये। इस दिन को जगह–जगह दमन विरोधी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

14 अप्रैल (1963) – महान लेखक राहुल सांकृत्यापन की मौत।

18 अप्रैल (1930)– चटगाँव विद्रोह। बंगाल (अब बंगलादेश) के चटगाँव शहर में मास्टर सूर्यसेन के नेतृत्व में तरुण क्रान्तिकारियों के दल ने ब्रिटिश शासन ने खिलाफ विद्रोह कर दिया और शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया।

22 अप्रैल (1870) – रूसी क्रान्ति के महान नेता व्लादिमीर इलिच लेनिन का जन्म दिवस।

तर्कशील योद्धा-बलवंत सिंह जी

हरमन प्यारे, बलवंत सिंह जी को साथी 'मास्टर जी' कह कर पुकारते थे उनका जन्म 3 फरवरी 1955 को गांव सन्धौली (पिहोवा) जिला कुरुक्षेत्र ,हरियाणा में हुआ था। उनकी शादी तपिन्द्र कौर जी के साथ 1979 में हुई। उनके दो बेटे अमनदीप सिंह, फतेह सिंह एवं एक बेटी कर्मजीत कौर है। उनके तीनों बच्चे शादीशुदा हैं। उनके दामाद रविन्द्र सिंह, पुत्र वधुएं जसविन्द्र कौर व सिमरनजीत कौर तथा उनके पोते-पोतियां, दोहते-दोहतियां व मित्रगण उनके भौतिक तौर पर न होने के कारण शोकग्रस्त हैं। हम सबको इस कटु सत्य पर विश्वास नहीं हो रहा है कि हरदिल अजीज साथी मास्टर बलवन्त सिंह नहीं रहे,31जनवरी 2024 को उन्होंने हस्पताल में अंतिम सांस ली। परिवारिक सदस्यों और रिश्तेदारों सहित मास्टर बलवन्त सिंह जी की दिली इच्छा अनुसार उनका पार्थिव शरीर आयुष विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र को 1 फरवरी 2024 को प्रदान किया गया, ताकि समाज हित में उनके शरीर पर मैडिकल के छात्र-छात्राएं शोध करके बिमारियों की रोकथाम के उपाय ढूंढ सके। न सिर्फ जिन्दा रहकर बल्कि मरने के बाद भी मास्टर बलवन्त जी ने मानवता और तर्कशीलता का झण्डा बुलंद किया। एक बहुत संजीदा-संवेदनशील इन्सान, प्रबुद्ध शिक्षक, विकट स्थिति में उर्जा देने वाले अजीज, अध्यापक-कर्मचारी आन्दोलन और तर्कशील अभियान का विख्यात चेहरा बलवन्त सिंह अब भौतिक रूप से मौजूद नहीं है। भले ही वे शारीरिक तौर पर हमारे बीच नहीं होंगे, लेकिन इनके विचार, उनके काम, उनकी जनूनी ढंग से काम करने की शैली सदैव हौंसला देती हुई, उपस्थित रहेगी।



अध्यापन एंव कर्मचारी आंदोलन: कठिन परिस्थितियों में उन्होंने बी.ए./एम.ए./ज्ञानी की पढ़ाई की एंव साल 1981 में तदर्थ आधार पर पंजाबी के शिक्षक नियुक्त हुए थे। वरिष्ठ शिक्षक ज्ञानी उजागर सिंह के सानिध्य में उन्होंने ज्ञानी की परीक्षा पास करके पंजाबी शिक्षक बनने का रास्ता चुना था। अस्थायी और बेरोजगार अध्यापक संघ को सक्रिय करने में उन्होंने अहम् योगदान दिया और अस्थायी शिक्षकों को हरियाणा राजकीय अध्यापक संघ के अभिन्न हिस्से के रूप में मंच की तरह संगठित किया। प्रा. बलवंत सिंह को अस्थायी एवं बेरोजगार अध्यापक संघ के महासचिव की कमान सौंपी गई और इस नाते हरियाणा राजकीय अध्यापक संघ की राज्य कार्यकारिणी के सदस्य भी बनाए गए। 1985 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी से मिलने वाले प्रतिनिधि मंडल में भी वे शामिल रहे। बाद में हरियाणा राजकीय अध्यापक संघ कुरुक्षेत्र की इकाई के सचिव चुने गए तथा इस नाते राज्य कार्यारिणी के सदस्य के तौर पर निर्वाचित हुए। उन्होंने सत्यपाल सिवाच, मास्टर शेर सिंह, ऋषिकान्त शर्मा, सत्यप्रकाश, रामनाथ धीमान, होशियार सिंह आर्य, धर्मपाल चहल जैसे योद्धा अध्यापक साथियों के साथ काम किया और अनेक संघर्ष लड़े और जीते। अध्यापन में लंबा समय बिताने के बाद वे 28 फरवरी 2013 को प्रध्यापक पद से सेवानिवृत्त हुए।

तर्कशील आन्दोलन, अंधविश्वास पाखण्डों के खिलाफ संघर्ष: अध्यापक नियुक्त होने से पहले से ही मास्टर बलवंत सिंह जी तर्कशील आन्दोलन के सम्पर्क में आ चुके थे।उन्हें अध्ययन का बहुत शौक था जिस कारण उनके घर पर किताबों की लाइब्रेरी बनी हुई है उन्होंने मार्क्सवाद ,विज्ञान,साहित्य का गहन अध्ययन किया डाक्टर कोव्वुर व शहीद भगत सिंह के साहित्य ने उन्हें तर्कशील बनाया इसके साथ ही पंजाबी लेखक नानक सिंह,जसवंत सिंह कंवल के साहित्य ने उन्हें सामाजिक चेतना से लैस कर दिया इसी दौरान पंजाब में तर्कशील मेघराज मित्र के सम्पर्क में आने पर व हरियाणा में सक्रिय अन्य तर्कशील बलबीर सिंह सैनी,जनकराज,मा.राजा राम,चुन्नी लाल ,मेहर सिंह विर्क,ज्ञान चंद बंसल आदि के साथ मिल कर हरियाणा में तर्कशील सोसायटी की जींद में 1988 में स्थापना की,इस बैठक में पँजाब से सरजीत तलवार,रमेश तांगड़ी, शहीद साथी जगरूप सम्मिलित हुए।उनकी रूचि, जनून और मानवता के प्रति वचनबद्धता के चलते तर्कशील सोसायटी हरियाणा की राज्य कमेटी में सन् 1988में आने के बाद वे 1990 में राज्य सचिव चुने गए ।1996 में उनके ज्ञान और प्रतिभा को देखते हुए उन्हें राज्य प्रधान बनाया गया।1998 में उन्हें पत्रिका तर्कज्योति का सम्पादक बनाया गया।जिस की जिम्मेवारी वे 2003 तक निभाते रहे।2003 में उन्हें फिर से राज्य प्रधान चुना गया और वे लंबे समय तक इस पद पर बने रहे ।बाद में उन्हें तर्कशील पथ पत्रिका के सम्पादक के तौर पर जिम्मेवारी दी गई ,वर्तमान में भी आप तर्कशील पथ पत्रिका के सम्पादक थे। मास्टर बलवंत सिंह पत्रिका को न केवल सुचारू रूप से निकालते थे बल्कि वह तथ्यपरक लेख एवं सम्पादकीय लेखनी से आमजन-मानस को जागरूक करते रहे। तर्कशील सोसायटी को हरियाणा भर में स्थापित करने में सक्रियता के साथ ही उन्होंने अन्य राज्यों उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखंड, राजस्थान, उत्तराखंड आदि में तर्कशील कार्यक्रम करते रहे।

लोग अज्ञानता से निकलें व वैज्ञानिक सोच के धारणी बने इसके लिए सदा कार्य शील रहे ,क्योंकि ज्ञान के अभाव के कारण लोग बाबाओं, पाखण्डियों, तान्त्रिकों आदि के चंगुल में फंस जाते हैं और उससे अन्धविश्वासों, पाखण्डों आदि को बढ़ावा मिलता है। लोग इन पाखण्डी बाबाओं को ना केवल अपना धन लूटाते है बल्कि लोगों की अज्ञानता व अन्धविश्वास का फायदा उठाकर तथाकथित बाबा महिलाओं का शरीरिक शोषण तक करते हैं। मास्टर बलवन्त सिंह ने तर्कशील आन्दोलन के एक सच्चे सिपाही का फर्ज निभाते हुए अंधविश्वसों व चमत्कारों का पर्दाफाश करने के लिए जागरूकता अभियान चलाते रहे। वे स्कूलों, कालेजों, एडवोकेट बार एसोसिएशनों, गावों, मौहल्लों आदि में अपनी किट व साथियों के साथ पहुंचते और चमत्कारों का पर्दाफाश करते और लोगों को वैज्ञानिक सोच अपनाने के लिए ताउम्र प्रेरित करते रहे।

मानसिक रोगियों का मार्गदर्शनः मानसिक रोगियों के मार्गदर्शन का जिम्मा भी मास्टर बलवन्त सिंह जी ने बखूबी निभाया। वह अपने फार्म हाऊस खानपुर कोलियां पर कथित भूत-प्रेतों अथवा अंधविश्वासों से जकड़े मानसिक रोगियों को वैज्ञानिक ढंग से मार्ग दर्शन करते। आप तकनीक के आधुनिक युग में देश-विदेश में सैंकड़ों-हजारों किलोमीटर दूर बैठे रोगियों को वीडियो कान्फ्रेंसिंग के माध्यम से काउंसलिंग देते।इस तरह से उन्होंने अपने जीवनकाल में हजारों की संख्या में मानसिक रोगियों का वैज्ञानिक ढंग से समाधान किया। मानसिक रोगियों को बिना लोभ लालच के घंटों तक अपना कीमती समय दे कर मार्गदर्शन करना यह प्रदर्शित करता है कि वह तर्कशीलता एवं मानवता के सच्चे प्रहरी थे। गर्मी के महीने में वे मानसिक रोगियों को जिनकी काउंसलिंग करते उन्हें बिजली चले जाने पर हाथ से पंखा तक करते देखा जा सकता था। अंधविश्वासों से ग्रस्त हजारों लोगों का समाधान करने की केस रिपोर्ट पत्रिका तर्कशील पथ का खास आकर्षण रहती थी, जिसे पाठक बेहद पसंद करते थे।

जानलेवा हमला और मास्टर जी पर झूठे केसः सिरसा प्रमुख राम रहीम पर यौन उत्पीड़न के आरोप लगे जिसको लेकर मास्टर बलवंत सिंह के गांव निवासी रणजीत सिंह कुरुक्षेत्र पर 10 जुलाई 2002 को हमला करवाया गया जिसमें उनकी जान चली गई, उसके तुरन्त बाद वो खूनी दरिन्दे मास्टर बलवन्त सिंह को मारने के लिए निकले लेकिन मास्टर बलवंत सिंह घर पर नहीं मिले और उनकी जान बच गई, लेकिन उसके बाद भी मास्टर जी पर कई जानलेवा हमले हुए। उन्हें फार्म पर रिवाल्वर दिखा कर धमकी तक दी गई लेकिन वहां पर मानसिक रोगियों के होने के कारण वे हमला न कर सके। बाद में डेरा प्रमुख के कुकर्मों को छापने वाले सच्चे पत्रकार रामचन्द्र छत्रपति पर 24 अक्तूबर 2002 को हमला करवाया गया और 21 नवम्बर 2002 को हस्पताल में उनका निधन हो गया। डेरा प्रमुख के खिलाफ बने केसों में मास्टर बलवंत सिंह अहम गवाह थे। उनको गवाही से रोकने के लिए करोड़ो रूपए के न केवल लालच दिए गए बल्कि जान से मारने की लगातार धमकियां दी। अन्ततः मास्टर बलवंत सिंह ने सीबीआई कोर्ट पंचकूला में बिना डरे बतौर पीड़ित पक्ष के हक में गवाही दी जिस कारण डेरा प्रमुख को माननीय न्यायालय द्वारा सजा दी गई। एक बाबा ने प्रशासन से मिलकर मास्टर बलवंत सिंह और उनके साथियों मास्टर बलजीत सिंह कुंडु, मास्टर सतीश (किसान नेता) और किसान नेता कर्मजीत सिंह पर झूठे केस बनवाए लगभग 20 वर्षों तक उनको कोर्टों के चक्र लगाने पड़े।

साक्षरता आंदोलनः सन 1991 में मास्टर बलवन्त सिंह जी साक्षरता अभियान से जुड़े और लम्बा समय उन्होंने प्रौढ़ों को साक्षर करने में लगाया

किसान आन्दोलनः हाल ही के वर्षों में मोदी सरकार ने कोरोना की आड़ लेकर अपने अम्बानी-अडानी सरीखे पूंजपति मित्रों को किसानों की जमीन देने के लिए काले कृषि कानून बनाए। जिसके खिलाफ देश में एक बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन पैदा हुआ। इस संयुक्त किसान मोर्चे में 500 से ज्यादा किसान संगठन शामिल हुए। मास्टर बलवन्त सिंह वैज्ञानिक विचार धारा से जुड़े होने के कारण अखिल भारतीय किसान सभा का लाल झण्डा कन्धे पर रख लिया और अपने बेटे फतेह सिंह के साथ मिलकर अपने पूरे फार्म हाऊस पर लाल झण्डे ऊँचे-ऊँचे लगा दिए और गांव-गांव में लोगों से संघर्ष में हिस्सेदारी करने की अपील के लिए किसान सभा के साथियों के साथ मिलकर निकल पड़े और जब तक संघर्ष आगाज से अंजाम तक नहीं पहुंचा वह इस जनपक्षीय कार्य में लगे रहे और आखिरी दम तक वह किसानों के संघर्षों में लगे रहते थे।

स्मरणः एक संघर्षशील योद्धा आखिरकार अनेकों संघर्षों का हिस्सा बनते हुए, उनको नेतृत्व प्रदान करते हुए वे भौतिक रूप से सदा के लिए हमसे बिछुड़ गया। हम सभी उनके द्वारा अधूरे छोड़े गए कार्यों व उनके सपनों का भारत बनाने के लिए ताउम्र संघर्ष करते रहेगे।

मास्टर बलवन्त सिंह अमर रहे।

मास्टर बलवन्त सिंह को लाल सलाम।

जारी कर्ता : तर्कशील सोसायटी हरियाणा

ये किसका लहू है कौन मरा

ऐ रहबरे मुल्क
आँखे तो उठा
नज़रे तो मिला
कुछ हम भी सुनें
हमको भी बता
ये किसका लहू है कौन मरा.....

पृथ्वी का छोर कहाँ है ?

–पावेल क्लुशान्त्सेव

वसंत ऋतु में खुले मैदान में कितना अच्छा लगता है। फूलों की सुगन्ध आती है; हवा बिल्कुल साफ होती है और चारों ओर दूर-दूर तक सब कुछ दिखायी देता है।

अगर किसी टीले पर चढ़ जाओ तो और भी दूर तक दिखायी देता है। दूर वहाँ खेत खत्म हो रहे हैं, उनके आगे जंगल है। पास ही झील चमक रही है, बल खाती राह चली गयी है। वहाँ आगे फिर खेत है, मैदान है। उनके आगे शायद, फिर से जंगल होगा, सड़कें, झीलें, नदियाँ, नगर होंगे।

लगता है कि पृथ्वी एक बहुत ही बड़े सपाट थाल जैसी है। लगता है न?

ऊपर से आकाश ने एक विराट छत्त की भाँति इस थाल को ढक रखा है। दिन में यह छत आसमानी होती है, रात में काली और तब उस पर तारे चमकने लगते हैं, जैसे कि बहुत दूर कहीं जलती बत्तियाँ।

लगता है कि यह छत विशाल गुम्बद है और इस गुम्बद के सिरे सपाट थाल पर-पृथ्वी पर टिके हुए हैं। और यदि हम देर तक पृथ्वी पर एक ही दिशा में चलते जायें तो उस स्थान तक पहुँच जायेंगे, जहाँ ''धरती और आकाश मिलते हैं''। तुमने शायद वह बौने घोड़े की कहानी सुनी हो-कैसे वह इवान को अपनी पीठ पर बिठाकर वहाँ ले गया जहाँ धरती और आकाश मिलते हैं और बस फिर इवान आकाश पर उड़ने लगा।

कितना अच्छा होता अगर सचमुच ही ऐसा होता। तुम पृथ्वी पर चलते जा रहे हो, फिर पहाड़ पर चढ़ जाते हो, कोई छोटी सी नाली लाँघते हो और आगे बादलों पर चलने लगते हो। ऊपर से जंगलों-मैदानों का नजारा देखते जाओ, उनके बीच अपना घर ढूँढो।

अफसोस, मगर ऐसा नहीं हो सकता।

लेकिन पुराने जमाने में लोग सोचते थे कि यह सम्भव है। पूरी गम्भीरता से वे ऐसा सोचते थे। उन्हें विश्वास था कि आकाश एक बहुत बड़ा उलटाया हुआ प्याला है और पृथ्वी विराट थाल है, जिसका छोर भी है, जैसे कि हर थाल का होता है।

बेशक, उन्हें यह जानने का बहुत कौतूहल होता था! कि वहाँ ''पृथ्वी के छोर के पार'', ''आसमान के उस ओर'' क्या है?

लेकिन बहुत दूर-दूर तक जाने पर भी लोगों को पृथ्वी का छोर कहीं दूर तक से नज़र नहीं आया।

तब लोगों ने यह सोचा कि हो न हो यह थाल, जिस पर हम रहते हैं, अत्यधिक बड़ा है। शायद इसका छोर बहुत दूर कहीं, ऊँचे पहाड़ों, जंगलों, समुद्रों के पार है और बौने घोड़े पर सवार होकर ही वहाँ पहुँचा जा सकता है।

उधर लोगों के मन का कौतूहल भी शान्त नहीं हो रहा था। वे सोचते थे - हर थाल किसी न किसी चीज़ पर टिका होता है। आखिर थाल यों अपने आप ही हवा में तो नहीं लटका हो सकता। यह तो हँसी की बात लगती है। सो पृथ्वी भी किसी चीज़ पर टिकी हुई है। लेकिन कैसी है उसकी टेक? यह किसी तरह पता ही न चलता था।

ऊपर से भूचाल भी आते थे। तब पृथ्वी डोलने लगती थी, पहाड़ चटखते और ढह जाते थे, समुद्र से भीमकाय लहरें उठती थीं। लोगों की दशा वैसी होती थी, जैसी रजाई पर बिलौटों की होगी, यदि तुम रजाई तले अचानक करवट बदल लो।

सो, लोगों ने सोचा कि पृथ्वी किन्हीं शक्तिशाली जीवों की पीठ पर टिकी हुई है। जब तक ये जीव सोते रहते हैं तब तक सब ठीक रहता है, लेकिन जैसे ही वे जागकर हिलने-डुलने लगते हैं वैसे ही भूचाल आने लगता है।

अब लोगों ने तय किया कि पृथ्वी तीन विराट ह्वेलों पर टिकी हुई है। ह्वेल से बड़ा जीव तो संसार में और कोई है ही नहीं।

लेकिन यदि पृथ्वी ह्वेलों पर टिकी हुई है, तो ह्वेल किस पर टिके हुए हैं ?

ह्वेलें समुद्र में तैरती हैं, लोग अपने ही सवाल का जवाब देते थे। ह्वेलें तो सदा तैरती ही रहती हैं न।

तो फिर समुद्र कहाँ फैला हुआ है ?

पृथ्वी पर।

और पृथ्वी ह्वेलों पर ?

कुछ बात बनती नहीं थी।

सो लोग कहने लगे : ''पृथ्वी तीन ह्वेलों पर पर टिकी हुई है। बस, बात खत्म। अगर तुम्हें इतने पर सन्तोष नहीं होता तो जाओ खुद जाकर देख लो।''

अब तो ये कहानियाँ हमें हास्यास्पद लगती हैं, लेकिन तब लोग इन बातों में विश्वास करते थे। किसी को कुछ पता जो नहीं था। और किसी से वे पूछ भी नहीं सकते थे।

प्राचीन युग में लोग पृथ्वी पर बहुत दूर तक तो जा नहीं सकते थे। तब न सड़कें थीं, न मोटरगाड़ियाँ, न जहाज, रेलगाड़ियों और हवाई जहाजों की तो बात ही छोड़ो। इसलिए ह्वेलों की बात परखने के लिए ''पृथ्वी के छोर'' तक कोई नहीं पहुँच पाता था।

फिर भी धीरे-धीरे लोग यात्राएँ करने ही लगे। ऊँटों पर बैठकर वे दूर ही दूर जाने लगे, बड़ी-बड़ी नावों में नदियों और समुद्रों में जाने लगे।

अब रास्ते से भटक न जायें इसके लिए लोग अपने पाँवों तले नहीं, आसमान को देखने लगे। समुद्र में जहाँ चारों ओर पानी के अलावा और कुछ नहीं होता, रास्ता और कैसे ढूँढा जा सकता है? या फिर रेगिस्तान में ? वहाँ भी चारों ओर बस रेत ही रेत होती है। सूर्य, चन्द्रमा और तारे तो सभी जगह नज़र आते हैं - समुद्र में भी और रेगिस्तान में भी। उन्हें जंगल में भी देखा जा सकता है और पहाड़ों के बीच गहरे खड्डों के तले से भी। और वे सदा अपने स्थान पर ही होते हैं।

सूर्य, चन्द्रमा और तारे आकाश पर सदा एक ही तरह से चलते हैं। ऐसा तो कभी नहीं होता कि सूर्य उलटी दिशा में, पश्चिम से पूर्व को चलने लगे; या फिर चन्द्रमा उगे और आसमान पर एक ही जगह खड़ा हो जाये; या तारे अपनी जगह से हटकर कहीं और चले जायें। दिन प्रतिदिन, वर्ष प्रति वर्ष सूर्य, चन्द्रमा और तारे आकाश पर एक ही गति से चलते रहते हैं, जैसे कि घड़ी की सुइयाँ।

पृथ्वी पर चाहे कुछ भी हो - बारिश आये, आँधी आये, तूफान आये - सूर्य, चन्द्रमा और तारे आकाश पर एक समान गति से चलत रहते हैं।

तब लोगों ने सोचा कि हो न हो आकाश के पीछे कोई बहुत जटिल यंत्र छिपा हुआ है। शायद, यह यंत्र घड़ी जैसा है। वहाँ पहाड़ जितने बड़े दाँतेदार चक्के घूमते होंगे और वे पृथ्वी के ऊपर तारों भरे इस आकाश को घुमाते होंगे। आकाश भी तो बहुत भारी होगा - इतना बड़ा जो है।

कितना अच्छा हो अगर पृथ्वी के छोर तक पहुँचकर आकाश में छेद कर लिया जाये और देखा जाये उसके पार क्या है! कितना रोचक होगा वहाँ सब कुछ।

हँसो नहीं। कभी लोगों को सचमुच आकाश के उस पार के इन विराट ''चक्कों'' में विश्वास था।

ख़ैर, जो भी हो, लोग इस बात के आदी हो गये कि आकाश पर सदा अटल व्यवस्था रहती है, कि खगोलीय पिण्डों का भरोसा किया जा सकता है, वे कभी दगा नहीं देंगे। इससे लोगों को दूर-दूर की यात्राएँ करने में मदद मिलती थी।

उदाहरण के लिए रोजाना डूबते सूरज की दिशा में बढ़ते हुए पथिक जानते थे कि वे एक ही दिशा में जा रहे हैं और बेशक, कभी भटकते नहीं थे।

यह मत भूलो कि तब न कुतुबनुमा (कम्पास) था, न मानचित्र, न प्रकाश-स्तम्भ।

तो इस तरह तारों को देख-देखकर यात्रा करते हुए लोगों का ध्यान एक विचित्र बात की ओर गया।

ऐसा होता कि लोग अपने गाँव से ऊँटों पर सवार होकर लम्बी यात्रा पर निकले और उन्होंने किसी चमकते तारे को अपना पथ-प्रदर्शक मान लिया।

अब वे चलते जाते हैं, चलते जाते हैं - एक दिन, दो दिन, हफ्ता भर और देखते क्या हैं कि हर अगली रात को वह तारा क्षितिज से अधिक ऊपर दिखायी देता है। जैसे कि पथिक सपाट मैदान पर नहीं चल रहे बल्कि विशाल ढलवाँ टीले पर चढ़ रहे हैं और उन्हें टीले के पार अधिक ही अधिक दूर का दृश्य दिखायी दे रहा है। जब वे घर लौटते हैं तो तारा हर रात को पहले से नीचे नज़र आता है, मानो वे उससे दूर टीले के पीछे जा रहे हैं।

सो, लोगों ने सोचा - इस सबका मतलब है कि पृथ्वी उभारदार है, औंधे रखे किसी विशाल कड़ाहे की भाँति।

मजे की बात तो यह है कि समुद्र में जल भी उभारदार निकला। नौयात्रियों ने ही नहीं, बल्कि सागर तट पर रहने वाले लोगों ने भी यह बात देखी। वे समुद्र में जाते जहाज को देखते, पहने तो सारा का सारा जहाज़ नज़र आता, फिर उसके केवल पाल ही और फिर मस्तूलों के ऊपरी सिरे ही और अंततः पूरा जहाज ओझल हो जाता। जैसे कि उसने कोई पहाड़ पार किया, हो और उस पार की ढलान पर उतर गया हो।

तुम स्वयं भी समुद्र या झील के तट पर यह बात देख सकते हो। हाँ, पानी में ऊँची लहरें नहीं उठ रही होनी चाहिए और पानी के पास झुककर जहाज को देखना चाहिए।

जहाज जब पाँचेक किलोमीटर दूर चला जायेगा तो उसका निचला हिस्सा पानी के पीछे छिपने लगेगा। दसियोयं किलोमीटर दूर निकल जाने पर ही जहाज पूरी तरह ओझल होगा। इसलिए दूरबीन से देखने पर ही तुम्हें यह सब अच्छी तरह नज़र आयेगा।

प्राचीन युग में लोगों के लिए इस विचार का आदी होना बहुत कठिन था कि समुद्र उभारदार है। वे तो सदा से यही देखते आये कि पानी जब भी बिखरता है तो एक समान, सपाट फैलता है। लेकिन इस बात पर उन्हें विश्वास करना ही पड़ा। सो अब लोग यह मानने लगे कि पृथ्वी सपाट थाल नहीं, बल्कि गोलार्ध है, जिस पर पता नहीं कैसे समुद्र ''पोत'' दिये गये हैं।

परन्तु गोलार्ध के भी सिरे होने चाहिए। लोगों ने समुद्रों की यात्राएँ कीं, दूर-दूर के देशों को गये, लेकिन ''पृथ्वी के छोर'' की कोई कहीं दूर से भी झलक तक न पा सका।

एक और बात थी जिस पर लोगों को बहुत दिमाग़ लड़ाना पड़ रहा था। सूर्य, चन्द्रमा और तारे तो रोजाना कहीं डूब जाते हैं, पृथ्वी के छोर के पीछे डुबकी लगाते हैं और अगले दिन दूसरी ओर से निकल आते हैं। तो भी ऐसा कभी नहीं हुआ कि वे उन स्तम्भों में फँस गये हों, जिन पर पृथ्वी टिकी हुई है। तारे भी सदा सभी अपने स्थान पर होते हैं। सूर्य और चन्द्रमा को भी कभी पूरब में उगने में देरी नहीं होती।

लगता है कि पृथ्वी के तले, जहाँ से खगोलीय पिण्ड गुजरते हैं, कुछ नहीं है।

अब लोगों ने सोचा: यह भी तो हो सकता है कि कोई स्तम्भ-वस्तम्भ हो ही न ? और पृथ्वी गोलार्ध नहीं गोला है? यह गोला किसी पर भी टिका नहीं हुआ है, बल्कि किसी जादुई बल से लटका हुआ है?

अगर ऐसा मान लिया जाये, तो सभी पहेलियाँ आसानी से बूझी जा सकती हैं - पृथ्वी का छोर क्यों नहीं है और सूर्य क्यों कहीं फँसे बिना रात को पृथ्वी के नीचे से गुजर जाता है।

बस एक ही बात समझ में नहीं आती थी - पृथ्वी के दूसरी ओर लोग कैसे चलते हैं? वहाँ तो उनका सिर नीचे और पैर ऊपर होते होंगे!

सैंकड़ों साल बीतने पर भी लोग ऐसे बड़े-बड़े जहाज बनाना सीख पाये, जिन पर महासागर पार किये जा सकते थे। अब लोगों ने सारी पृथ्वी का चक्कर लगाया तो उन्हें पूरी तरह यकीन हो गया कि पृथ्वी एक गोला है। और वे यह भी समझ गये कि पृथ्वी पर कोई भी सिर नीचे पाँव ऊपर करके नहीं चलता है। क्योंकि पृथ्वी ही सदा नीचे होती है। अब तो हम सब बचपन से ही जानते हैं कि पृथ्वी एक गोला है। हर स्कूल में अब ग्लोब है। लेकिन जरा सोचो कि पहले लोगों के लिए इस निष्कर्ष पर पहुँचना कितना कठिन था।

('आओ दूरबीन देखें' पुस्तक से)

(कोंपल अप्रैल-जून 2014)

पृष्ठ 30 का शेष

मजबूत की गई। निरगुन ब्रह्म पुरोहितवाद को अधिक खाद-पानी नहीं दे सकता, यह सगुन ही दे सकता है. अंधविश्वासों की गुंजायश यहां अधिक होती है. इन अंध विश्वासों के बल पर ही बेलगाम पुरोहितवाद का विकास संभव है. पुरोहितवाद की यह प्राण-प्रतिष्ठा हमारे सामाजिक-राजनीतिक जीवन को पीछे ले जाएगा.

लोकतान्त्रिक समाज का धर्म-केंद्रित होना खतरनाक संकेत है. इसे ज्ञान-केंद्रित बनना ही चाहिए. जो देश-समाज ज्ञान-केंद्रित नहीं होगा, वह अंततः मिट जाएगा. आज पाकिस्तान, बंगलादेश और अफगानिस्तान जैसे देशों की स्थिति हम देख रहे हैं. नेपाल ने कायांतरण किया है. लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारत धर्म-केंद्रित होता जा रहा है. यह विकट स्थिति है. भारतीय समाज को अभियान चला कर विवेकपूर्ण बनाना होगा. दाभोलकर, कलबुर्गी, पनसारे, गौरी लंकेश और उनके जैसे लेखकों -विचारकों की चिंता और संघर्ष इसीलिए है कि हमारा देश-समाज आगे बढ़ने की जगह पीछे अतीत में चलने न लगे. यह बड़ी जिम्मेदारी थी, जिसे उन लोगों ने अपनी जान देकर निभाई. दाभोलकर की ये तीन किताबें हमारे हिंदी भाषी समाज का जरूरी पाठ्य होना चाहिए,क्योंकि हमारा समाज कुछ अधिक पिछड़ा हुआ है।

गॉडमैन टू कॉरपोरेट

सवदेश सिन्हा

60 से 70 के दशक में भारतीय बाबा और गुरुओं के बाजार में सर्वप्रथम 'महेश योगी' एक बड़े नाम के रूप में उभरे थे। यह वही समय था, जब पश्चिम जगत में 'हिप्पी आंदोलन' उभरा था। यह पश्चिम, विशेष रूप से अमेरिका में आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक संकट का दौर था। वियतनाम में अमेरिकी बर्बरता के खिलाफ अमेरिका तथा पूरे पश्चिमी जगत में बड़े आंदोलन चल रहे थे।

पश्चिम में इसके अलावा एक अराजक पीढ़ी पैदा हुई थी, जो कथित खुशी की तलाश में पूर्वी देशों विशेष रूप से भारत, नेपाल, थाईलैंड की ओर रुख कर रही थी। काठमांडू, बैंकाक, बनारस, गोवा आदि में ये पश्चिमी युवक बड़े पैमाने पर देखे जा सकते थे। ये लोग कुछ भी खा-पी लेते थे, अजीबोगरीब वेश-भूषा में ये लोग विभिन्न नशे में डूबे बनारस के घाटों समुद्र तटों पर पड़े रहते थे।

महान संगीतकार 'बीटल्स' का भी इस आंदोलन को साथ मिला। वे बनारस आये और लंबे समय तक यहाँ रहे भी। इस अराजक आंदोलन का सबसे अधिक फायदा भारतीय 'बाबा, साधुओं और कथित गुरुओं' ने उठाया। हरिद्वार, ऋषिकेश, वाराणसी के बाबाओं के आश्रम इन लोगों से भर गए! तंत्र-मंत्र, साधना और योग-आध्यात्म का भारतीय बाजार चल निकला, लेकिन इसमें सबसे बड़ा नाम महेश योगी और रजनीश का उभरा था!

महेश योगी योग का एक कथित नया वर्जन 'भावातीत ध्यान' लेकर आए, जिसमें कुछ भी नया नहीं था, केवल पुराने माल को नये रैपर में पेश किया था। महेश योगी ने हालैण्ड, स्विट्ज़रलैंड में अपने आश्रम खोले और पश्चिमी लोगों से भारी फीस लेकर यह कथित ध्यान सिखाने लगे। कोई पूछ सकता है कि महेश योगी ने अपना यह कथित ध्यान भारतीय लोगों को क्यों नहीं उपलब्ध कराया? इसका उत्तर बहुत आसान है, क्योंकि अभी भारतीय मध्यवर्ग की यह हालत नहीं थी कि वह पैसे खर्च करके योग आध्यात्म के बाजार में इसे खरीद सके!

महेश योगी ने अपने इस कथित ध्यान को पश्चिमी समाज के अनुकूल बनायाः जैसे उनके आश्रम में माँसाहार, शराब या सेक्स की कोई रोक-टोक नहीं थी। महेश योगी ने पश्चिमी देशों में अपने इस कारोबार में अकूत पैसे और नाम कमाया! बाद में महेश योगी ने भारत में 'महर्षि विद्या मन्दिर' के नाम से बच्चों के स्कूल की एक श्रृंखला शुरू की। ये अंग्रेजी मीडियम के पब्लिक स्कूल थे। इनका योग आध्यात्म से कोई लेना-देना नहीं था। ये महंगे स्कूल आम पब्लिक स्कूलों की तरह से थे तथा यहाँ पर अध्यापकों और कर्मचारियों का उसी तरह शोषण होता था,जैसा आम निजी संस्थानों में होता है।

महेश योगी के सितारे 80-90 के दशक के बाद उनकी मृत्यु होने के बाद करीब-करीब डूब गए, हाँलाकि देश-विदेश में उनके अनेक संस्थान और स्कूल आज भी चल रहे है। महेश योगी ब्रांड के ह्रास के पीछे बड़ा कारण यह था कि धर्म और आध्यात्म के इस धंधे में कुछ बड़े खिलाड़ी और आ गए थे! इसमें बड़ा नाम 'रजनीश' का था। (रजनीश का मूल्यांकन फिर कभी विस्तार से करूँगा)

90 के दशक में अपने देश तथा दुनिया भर में नवउदारवादी आर्थिक नीतियाँ मजदूर, किसानों तथा आम जनता के लिए; जहाँ तबाही/बर्बादी लेकर आई, वही एक बड़ा भारतीय मध्यवर्ग भी पैदा हुआ! इस वर्ग की कोई विचारधारा नहीं थी। इसकी केवल पैसा ही विचारधारा थी। यह वर्ग हद दर्जे का स्वार्थी, अमानवीय और मतलबी था। यह पैसे कमाने के लिए कुछ भी करने को तैयार था। अपवादों को छोड़ कर मूलतः यह भारतीय सवर्ण जाति का था। इसमें डॉक्टर, इंजीनियर, बड़े नौकरशाह तो थे ही, प्राइवेट कंपनियों और बैंकों आदि में काम करने वाले बड़े अधिकारी भी थे।

इन लोगों के पास जायज नाजायज तरीकों से कमाया अपार पैसे है। अब इसके पास इतने पैसे थे, कि धर्म, आध्यात्म, योग आदि को मुँह माँगे पैसे से भारत में ही खरीद सके। इनकी इस माँग की पूर्ति करने के लिए दो बड़े गुरु बाजार में उतरे। इसमें एक थे 'श्री श्री रविशंकर' और दूसरे 'रामदेव'।

श्री श्री रविशंकर मूलतः उच्च मध्यवर्ग के गुरु

हैं। ये खाए-पीए अघाए इस वर्ग को कथित रूप से खुशी उपलब्ध कराते हैं, 'आर्ट आफ लिविंग' नाम से। इनके लोगों की कथित योग-साधना आप बड़े शहरों में मैदानों आदि में देख सकते हैं। रात-दिन किसी भी उपाय से पैसे कमाने की धुन ने इस वर्ग के चेहरों से मुस्कान-हँसी छीन ली है। यह वर्ग तरह-तरह के मानसिक बीमारियाँ और अनिद्रा आदि का शिकार है। रविशंकर बाबा इन लोगों को खुश रहने का उपाय पैसे लेकर बताते हैं, लेकिन वे यह नहीं बताते कि उनके दुखों का मुख्य कारण धन की अधिकता है।

इस दौर के दूसरे बड़े बाबा 'रामदेव' है। इनकी लंबी यात्रा, धर्म और आध्यात्म-योग से लेकर कॉरपोरेट बनने तक की है।

इनके बारे में पहले भी बहुत कुछ लिखा गया है, इसलिए केवल संक्षिप्त में कुछ बातें करेंगे। रामदेव का प्रारंभिक जीवन रहस्यमय और विवादास्पद है। हरिद्वार के पातंजलि योगपीठ नामक एक छोटे से आश्रम से इनकी कहानी शुरू होती है। वहाँ इनके गुरु एक दिन रहस्यमय तरीके से गायब हो जाते हैं। वे फिर कभी वापस नहीं आते हैं। उनके गायब होने का आरोप रामदेव पर लगा, लेकिन यह आरोप कभी सिद्ध नहीं हुआ। इसके बाद ही वे पातंजलि योगपीठ के सर्वेसर्वा बन गए।

यहीं से उनकी यात्रा की शुरुआत हुई। रामदेव ने दावा किया था, कि वे योग के कुछ नए सूत्र खोज कर लाए हैं, लेकिन वस्तुतः उनके योग में नया कुछ भी नहीं था/है; नयी थी तो उनकी मार्केटिंग। हर शहर में उनके आठ-दस दिन के योग शिविर लगने लगे, वहाँ पर टिकट लगाकर सुबह-सुबह योग-आसनों की कसरतें होने लगी। रामदेव ने योग, आध्यात्म और अंधराष्ट्रवाद की कुछ ऐसी खिचड़ी पकाई, जो मध्यवर्ग को बहुत स्वादिष्ट लगी। उन पर अपार पैसे बरसने लगे। इस सबसे उन्हें यह भ्रम हो गया कि वे राजनीति में भी सफल हो सकते हैं, लेकिन इस क्षेत्र में मौजूद घुटे-घुटाये राजनीतिक लोगों ने उनकी कमर तोड़ दी।

उन्होंने एक राजनीतिक पार्टी भी बनाई, लेकिन दिल्ली के रामलीला मैदान में धरना देते समय रात में पुलिस लाठीचार्ज के बाद सलवार पहन कर भागने के बाद उनके राजनीतिक जीवन का अवसान हो गया, इसके बाद उनके एक योगगुरु से कॉरपोरेट बनाने की यात्रा से सभी परिचित हैं। उनके ऊपर लिखी पुस्तक 'अ गॉडमैन टू कॉरपोरेट' में उनकी यात्रा के बारे में ये चीजें बहुत विस्तार से लिखी हैं। वास्तव ये कुछ प्रतिनिधि उदाहरण मात्र है। हमारे देश साधु-महात्मा योगगुरुओं की रूप में ठगों की भरमार है। ये अरबों-खरबों के मालिक और इनकी एक अवैध काली अर्थव्यवस्था है। भारतीय मध्यमवर्ग भले ही यूरोपीय मध्यवर्ग की तरह बहुत शानदार जीवन जी रहा हो, लेकिन यह बहुत पिछड़ा अंधविश्वासी और सामंती मूल्य-मान्यताओं से ग्रस्त हैं। एक बात और है। ये सारे 'गाडमैन' और मध्यवर्ग, भारतीय फासीवाद के जबरदस्त समर्थक हैं। इसलिए भारतीय फासीवादी और पूंजीवाद की लड़ाई, तर्कशीलता और वैज्ञानिक चिंतन के बिना पूरी नहीं हो सकती है।

शराब पार्टी को लेकर साधुओं में चाकू-चिमटे चले, दो घायल

पालवास में भंडारे से लौट कर रेलवे स्टेशन पर पहुँचे थे साधू

सीकर : रेलवे स्टेशन पर मंगलवार शाम को साधुओं के दो गुटों में शराब पार्टी को लेकर विवाद हो गया। वे नजदीकी धाम के भंडारे में शामिल होकर रेलवे स्टेशन पहुंचे थे। विवाद में एक पक्ष ने दूसरे पक्ष पर चाकू और चिमटों से हमला कर दिया। इसमें साधू का कान कट गया। दूसरे के सिर में चोट आई है। साधू रेलवे स्टेशन पर ट्रेन का इंतजार कर रहे थे। इस दौरान एक गुट शराब पार्टी करने लगा। दूसरे गुट ने इसका विरोध किया। इसके चलते दोनों गुटों में विवाद बढ़ गया। गुस्साए साधुओं के एक गुट ने चाकू और चिमटे निकाल लिए और सामने वाले गुट पर टुट पड़े। मारपीट में हरियाणा के विकासनाथ और सरजीवण नाथ को चोटें आई। विकासनाथ का चाकू से कान काट दिया, जबकि सरजीवन नाथ के सिर में चोटें आई है। दोनों घायल साधुओं को एसके हॉस्पिटल पहुंचाया।

''तर्कशील पथ'' पढ़ें, ''तर्कशील'' बने।

लोहे की कहानी

– वारुणी

हम सबने अपने आसपास लोहे से बनी बहुत सारी चीज़ें देखी होंगी। गाड़ियाँ, रेल की पटरियाँ, रेल के डिब्बे, पुल जैसी बड़ी-बड़ी चीज़ों से लेकर आलपिन और ब्लेड जैसी छोटी-छोटी चीज़ों तक न जाने कितनी अनगिनत चीज़ें लोहे या फिर स्टील से बनती हैं। स्टील जिसे इस्पात या फ़ौलाद भी कहते हैं, लोहे में ही कुछ और तत्त्वों को मिलाकर बनाया जाता है। वैसे तो मनुष्य के शरीर में भी लोहा मौजूद है और लोहे की कमी से हम बेहद कमज़ोर हो जाते हैं। लेकिन हम यहाँ उस लोहे की बातें करेंगे जो धातु के रूप में प्रकृति में पाया जाता है।

लोहा बहुत ही काम की चीज़ है। क्या तुम्हें पता है कि लोहे की खोज इतनी बड़ी बात थी कि उसकी खोज के बाद इतिहास में एक पूरे दौर को ''लौह युग'' का नाम दे दिया गया? यह आज से करीब 3000 साल पहले की बात है।

वैसे तो लोहे के बारे में बहुत सी मज़ेदार बातें हैं जानने को, लेकिन आज यहाँ हम सिर्फ़ कुछ ही चीज़ों पर चर्चा करेंगे।

क्या तुम सोच सकते हो कि इतिहास में एक ऐसा समय भी था जब सोने से ज्यादा कीमत लोहे की थी। हाँ बच्चो, प्राचीन काल में कुछ जातियों के लोग सोने से भी ज्यादा कीमती लोहे को मानते थे। बल्कि लोग लोहे के आभूषण पहना करते थे और उस दौर में केवल अमीर लोग ही लोहे के आभूषण पहन सकते थे। प्राचीन रोम में तो शादी की अँगूठियाँ भी लोहे की बनी होती थीं। आज हमें यह सोचने में अटपटा से लग सकता है क्योंकि आज बाजार में सोने के आगे लोहे की कीमत कुछ नहीं है। यह अलग बात है कि अगर मनुष्य के लिए उपयोगिता की बात करें तो लोहे के आगे सोना कहीं नहीं ठहरेगा।

लेकिन ऐसा क्यों होता है कि कुछ चीज़ें ज्यादा कीमती होती हैं और कुछ कम और यह तय कैसे होता है? कौन तय करता है इसे ? यह भी एक मज़ेदार सवाल है, तुम लोग इस पर जरूर सोचना और हम लोग इस पर आगे कभी चर्चा करेंगे। अभी फिलहाल इतना तो कहा ही जा सकता है कि प्राचीन समय में लोहे की उपलब्धता कम थी और उसकी ज़रूरत ज्यादा थी, इसलिए भी लोहा समाज में ज्यादा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था।

एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ में दर्ज एक कहानी से हमें हजारों साल पहले लोहे के महत्त्व के बारे में पता चलता है। एक बार मिस्र देश के एक राजा, जिसे वहाँ फ़ेराउन कहते थे, ने हित्ती कबीले के राजा से लोहा भेजने का अनुरोध किया, बदले में वे जितना चाहे उतना सोना देने के लिए तैयार थे। फ़ेराउन ने कहा कि उनके पास इतना सोना था जितना रेगिस्तान में रेत और वे सारा सोना लोहे के बदले देने को तैयार थे!

लोहा पहले इतना क़ीमती था कि प्राचीन असीरिया में आठवीं शताब्दी ई.पू. के शक्तिशाली राजा सारगोन द्वितीय के महल की खुदाई में पुरातत्वविदों को लोहे का एक ख़ज़ाना मिला जिसमें एक घर में करीब दो सौ टन लोहे की वस्तुएँ मिलीं और वहाँ इस धातु के बड़े-बड़े गोले भी मौजूद थे।

एक समय तक लोहे को ज्यादा क़ीमती इसलिए माना जाता था क्योंकि इसका उपयोग बहुत सारी चीज़ों में होता था और यह शुद्ध रूप में धरती पर उपलब्ध नहीं था। ऐसा माना जाता है कि मनुष्य को पहली बार जो लोहा मिला वह अन्तरिक्ष से गिरने वाले उल्कापिण्डों से प्राप्त हुआ। पृथ्वी की सतह पर हर साल लाखों टन वज़न के उल्कापिण्ड गिरते हैं जिनके अन्दर कम से कम 90 प्रतिशत लोहे की मात्रा होती है। प्राचीन काल में लोगों को धरती पर पड़े हुए ये उल्कापिण्ड मिले होंगे और यह लोहा आसानी से काम में लाया जा सकता था, इसलिए मनुष्य ने उससे साधारण औज़ार बनाने शुरू कर दिये होंगे। लेकिन उल्कापिण्डों से मिलने वाले लोहे पर निर्भर होकर नहीं रहा जा सकता था क्योंकि लोहे की आवश्यकता बार-बार पड़ती थी।

बाद के दौर में मनुष्य ने धरती की खुदाई कर लोहा निकालने का प्रयास शुरू किया। धरती के नीचे मिलने वाला कच्चा लोहा (जिसे लौह अयस्क कहते हैं) सीधे इस्तेमाल में नहीं लाया जा सकता पर धीरे-धीरे लोगों ने उसे शुद्ध करना भी सीख लिया। अब मनुष्य आकाशीय लोहे के

शेष पृष्ठ-22 पर

चटगाँव विद्रोह

– मनीष

1930 के अप्रैल माह में हुआ यह चटगांव विद्रोह कोई सामान्य आतंकवादी घटना नहीं थी। अंग्रेजों ने अपने पत्रों–दस्तावेजों में बार–बार इस घटना की तुलना 1857 के विद्रोह से की है। वास्तव में यदि चटगांव विद्रोह के दौरान के घटनाक्रम की गहराई में जायें, तो यह अच्छी तरह समझ में आ जायेगा कि 1857 के बाद चटगांव विद्रोह वह प्रथम घटना थी, जहां सूर्यसेन के नेतृत्व वाली इंडियन रिपब्लिकन आर्मी (आई. आर. ए.) के 56 बहादुर नौजवानों ने (जिनमें अधिकांश की उम्र 16–21 वर्ष थी) 21 अप्रैल को जलालाबाद की पहाड़ियों पर पूरे 24 घंटे साम्राज्यवादी ब्रिटिश सेना को सीधी टक्कर दी और उन्हें दो बार पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। इस मुठभेड़ में आई. आर.ए. के 10 नौजवान अपना काम अंजाम देकर शहीद हो गये। आई.आर.ए. का तो नारा ही था–'करो और मरो' (डू एण्ड डाई) जलालाबाद की इस शानदार लड़ाई से पहले आई.आर.ए. ने 18 अप्रैल की रात 10 बजे बहुत ही सुनियोजित तरीके से पुलिस लाइंस शास्त्रागार, टेलीफोन और टेलीग्राफ आफिस, सैन्य शास्त्रागार तथा यूरोपियन क्लब पर एक साथ धावा बोला। इसी दौरान उन्होंने असम–बंगाल रेलवे ट्रैक की पटरियां खोलकर पूर्वी बंगाल में स्थित इस चटगांव जिले को पूरी तरह शेष भारत से काट दिया। आपरेशन पूरी तरह सफल रहा और चटगांव शहर पूरी तरह महज 71 नौजवानों से बनी आई. आर. ए. के हाथ में आ गया। उन्होंने तुरंत यूनियन जैक को उतार कर जला दिया और तिरंगा फहरा दिया। इसके तुरन्त बाद 'अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार' की घोषणा कर दी गयी।

यह आश्चर्यजनक था कि यह पूरा आपरेशन महज चंद घंटों में पूरा कर लिया गया और इस दौरान में आई. आर. ए. का कोई भी साथी शहीद नहीं हुआ। यह उनके उच्च स्तर की तैयारी और दक्षता को ही दर्शाता है। इतने सफल आपरेशन के बावजूद आई. आर. ए. को जो चाहिए था, वह नहीं मिल सका। शास्त्रागार से जब्त की गयी बंदूकों के लिए बड़े पैमाने पर गोलियां। आई.आर.ए. के साथियों को यह नहीं पता था कि शास्त्रागार में बन्दूकें और गोलियां साथ–साथ नहीं रखी जातीं। पूरा शास्त्रागार कब्जे में होने के बावजूद गोलियां कहां हैं–यह किसी को पता न था। बिना गोलियों के शस्त्रागार से जब्त बन्दूकें किसी काम की न थीं। अत: मजबूरन उन्हें शस्त्रागार के साथ–साथ इन बन्दूकों को भी जला देना पड़ा, ताकि दुश्मन भी इनका इस्तेमाल न कर पायें। गोलियों के अभाव में 'आयरिश रिपब्लिकन आर्मी' (आई.आर.ए.) की तर्ज पर (जहां अप्रैल के महीने में ही 1916 में इसी तरह के सशस्त्र–विद्रोह के बाद डबलिन शहर को आयरिश क्रान्तिकारियों ने 7 दिन तक ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से लड़ते हुए अपने कब्जे में रखा था) चटगांव को लंबे समय तक अपने कब्जे में बनाये रखना संभव नहीं था। मजबूरन उन्हें चटगांव शहर खाली कर ऊपर पहाड़ियों–जंगलों की ओर कूच करना पड़ा। वहीं 21 अप्रैल को जलालाबाद की पहाड़ी पर वह प्रसिद्ध संघर्ष हुआ, जहां निम्न स्तर के हथियारों के बावजूद और जंगल में भटकते हुए तीन दिनों की भूखी–प्यासी आई. आर. ए. ने अत्याधुनिक हथियारों से लैस साम्राज्यवादी सेना को दो बार पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। बाद में अपने 10 साथियों की शहादत के बाद शेष साथी सुरक्षित जंगलों में लौट गये और इस तरह चटगांव विद्रोह का यह प्रथम चरण संपन्न हुआ।



सूर्यसेन

इस घटना ने पूरे भारत और विशेषकर समस्त बंगाल को उत्साह से भर दिया। आई.आर.ए. और इसके सुप्रीम कमांडर मास्टर सूर्यसेन बंगाल में घर–घर के नायक हो गये। उस समय की परिस्थिति को सुकान्त भट्टाचार्य की यह कविता बहुत बेहतर तरीके से अभिव्यक्त कर देती है–

''अमादेर स्नायुते स्नायुते
विद्युते प्रवाह आने
आने चेतनार दिन
चटग्राम, वर चट्टग्राम।''

लेकिन गांधी, नेहरू इससे एकदम अप्रभावित रहे। न तो उन्होंने चटगांव के इस सफल विद्रोह के बारे में कुछ कहा और न ही उन शहीदों के बारे में, जो साम्राज्यवादी सेना के साथ बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हुए। जबकि इसी दौरान 24 अप्रैल को गुजरात में गांधी के नशाबंदी आन्दोलन का एक कार्यकर्त्ता एक पेड़ काटते हुए, पेड़ के गिरने से मर गया। गांधी ने उसे शहीद का दर्जा देते हुए कहा कि 'वह मरा नहीं है, वह हर मां के सीने में जिंदा है'। लेकिन जलालाबाद के शहीद गांधी के लिए वास्तव में मर चुके थे। गांधी की इस 'बेदिली' ने उस समय के क्रान्तिकारियों को गहरे रोष से भर दिया था। लेकिन हद तो तब हो गयी जब गांधी ने क्रान्तिकारी हिंसा को सरकारी हिंसा के समकक्ष ला खड़ा किया और दोनों से लड़ने की प्रतिज्ञा कर डाली। गांधी के शब्दों में-

''मेरे लिए सरकारी हिंसा की तरह ही लोकप्रिय हिंसा भी हमारे मार्ग में अवरोध है। यह सही है कि मैं सरकारी हिंसा से ज्यादा अच्छी तरह लड़ सकता हूं, बनिस्पद लोकप्रिय हिंसा के। क्योंकि हिंसा से लड़ते हुए मेरे पास वैसा समर्थन न होगा, जैसा कि सरकारी हिंसा से लड़ते हुए मेरे पास होता है।'' (यंग इंडिया, 24 अप्रैल)

चटगांव-विद्रोह का दूसरा चरण कई मायनों में कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अनंत सिंह, गनेश घोष, लोकेननाथ पाल जैसे नेतृत्वकारी साथियों की गिरफ्तारी और पूरे चटगांव जिले को फौज को सौंपे जाने के कारण अब आई. आर. ए. तथा सूर्यसेन के लिए यह संभव नहीं था कि वे शहर में रहकर क्रान्तिकारी गतिविधियों को अंजाम दे। ऐसी परिस्थिति में सूर्यसेन और आई. आर. ए. के साथियों ने चटगांव के पहाड़ों-जंगलों में बसे गांवों को अपना आधार बनाया और 1933 तक पूरे 3 साल साम्राज्यवादी ब्रिटिश से न सिर्फ बचते रहे, वरन् गुरिल्ला कार्यनीति अपनाकर पलटवार भी करते रहे। इन्हीं कार्यवाहियों में प्रसिद्ध है-प्रीतिलता ओहदेदार के नेतृत्व में 24 सितम्बर 1932 को यूरोपियन क्लब पर की गयी कार्यवाही (जिसमें 3 यूरोपीय मारे गये थे) और चटगांव के बदनाम पुलिस अफसर अशानुल्लाह की एक 14 साल के नौजवान हरीपादा भट्टाचार्य द्वारा फुटबाल के मैदान पर दिनदहाड़े हत्या। इसके अलावा जंगल में अनेकों बार आई. आर. ए. का ब्रिटिश सेना के साथ आमना-सामना हुआ। इस दौरान जंगलों-गांवों में रहते हुए सूर्यसेन को ग्रामीण गरीब की ताकत का अंदाजा होने लगा था।

मास्टर सूर्यसेन तथा आई.आर.ए. का गरीब किसानों के साथ इस जुड़ाव का बहुत ही दिलचस्प वर्णन मालिनी चटर्जी ने अपनी पुस्तक 'डू एण्ड डाई : चटगांव अपराइजिंग 1930-34' में दिया है।

गरीब किसानों की इस ताकत का अंदाजा होने के कारण ही मास्टर सूर्यसेन ने शरतचन्द्र बोस (सुभाष चन्द्र बोस के बड़े भाई) के इस प्रस्ताव को विनम्रतापूर्वक ठुकरा दिया, जिसमें उन्होंने सूर्यसेन को सुरक्षित कलकत्ता निकालने का प्रस्ताव रखा था।

चटगांव विद्रोह से पहले क्रान्तिकारी आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी को लेकर भी प्रायः बहुत ही संकीर्ण दृष्टिकोण रहा है। ज्यादा से ज्यादा उनकी भूमिका सहयोगी के तौर पर ही स्वीकारी जाती रही है। लेकिन चटगांव विद्रोह के दूसरे चरण में प्रीतिलता ओहदेदार की शहादत व इसमें कल्पना दत्त की क्रान्तिकारी भूमिका ने क्रान्तिकारी आन्दोलन की इस कमी को भी दूर कर दिया। ऐसा लगता है मास्टर सूर्यसेन ने जानबूझकर यूरोपियन क्लब पर हमले का नेतृत्व प्रीतिलता को दिया था। जबकि उस ग्रुप में प्रीतिलता से ज्यादा अनुभवी लोग मौजूद थे। शायद वे समझ चुके थे कि बिना महिलाओं की भागीदारी के यह क्रान्तिकारी आन्दोलन जन-स्वरूप नहीं ले पायेगा। प्रीतिलता की शहादत के बाद उनके पास से जो पत्र पाया गया, उसमें प्रीतिलता भारत की महिलाओं का आह्वान करते हुए कहती-''महिलाएं अब इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं कि अब और पीछे नहीं रहेंगी और हर गतिविधि में, चाहे वह कितना ही खतरनाक व कठिन क्यों न हो, अपने भाइयों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी होंगी। मैं उम्मीद करती हूं कि महिलाएं अब अपने आपको कमजोर नहीं समझेंगी और सभी तरह के खतरों व कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार रहेंगी और इस तरह हजारों-हज़ार की संख्या में क्रान्तिकारी आन्दोलन में शामिल होंगी।'' प्रीतिलता की शहादत का महत्त्व इस बात से लग जाता है कि 1857 के विद्रोह में रानी लक्ष्मीबाई के बाद संभवतः वह पहली ज्ञात महिला शहीद हैं।

सच तो यह है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन में चटगांव-विद्रोह ने एक गुणात्मक फर्क डाल दिया था। और इस गुणात्मक फर्क का लाभ बाद के कम्युनिस्ट आन्दोलन को मिला। चटगांव-विद्रोह के अधिकांश कैदी बाद में कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये। मास्टर सूर्यसेन व उनके साथी तारकेश्वर दस्तीदार की गिरफ्तारी के बाद ही चटगांव विद्रोह का यह दूसरा चरण भी सम्पन्न हो गया।

मास्टर सूर्यसेन की गिरफ्तारी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए बहुत बड़ा तोहफा थी। पूरे तीन साल तक मास्टर सूर्यसेन ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को परेशान कर रखा था। लेकिन अब उनकी बारी थी। फांसी की सजा तो तय ही थी। लेकिन सूर्यसेन पर अभियोग के लिए गवाह जुटाना बहुत मुश्किल था। अंत में उन्होंने मास्टर सूर्यसेन आत्मकथात्मक नोट्स को ही आधार बनाकर उन्हें फांसी की सजा सुना दी। लेकिन सूर्यसेन के प्रति ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नफरत का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 12 जनवरी 1934 के नियत दिन पर उन्होंने फांसी पर जिंदा सूर्यसेन को नहीं, बल्कि मर चुके सूर्यसेन को लटकाया था। फांसी पर लटकाने से पहले ही उन्होंने सूर्यसेन और तारकेश्वर दोनों को पीट-पीट कर मार डाला था। (श्रोत-मार्क्सिट स्टडी फोरम द्वारा प्रकाशित मल्लिकार्जुन द्वारा सम्पादित पुस्तक 'इस्टर्न रिवेलियन एण्ड चटगांव अपराइजिंग') उनकी नफरत यहीं खत्म नहीं हुई। उनके मृत शरीर दफनाने या जलाने की बजाय उन्होंने उसे युद्धक जहाज 'टेनोन' के माध्यम से भारत की सीमा से सैकड़ों मील दूर बंगाल की खाड़ी में फेंक दिया। तब से लेकर आज तक न जाने कितना पानी बंगाल की खाड़ी में बह चुका होगा, लेकिन मास्टर दा के अन्तिम शब्द बार-बार हमें यह याद दिला रहे हैं कि ''काम अभी खत्म नहीं हुआ है। अभी बहुत दूर जाना है....18 अप्रैल, 1930, चटगांव में ईस्टर विद्रोह का दिन। इसे कभी मत भूलना। जलालाबाद, जुल्डा, चन्दर नगर और ढालघाट के संघर्षों को अपनी स्मृति में हमेशा जिन्दा रखो। भारत की स्वतंत्रता की बेदी पर जिन्होंने अपना जीवन न्यौछावर कर दिया, उनके नाम लाल अक्षरों में अपने हृदय के केन्द्र में लिख लो। जेल के अंदर और बाहर सभी को मेरी शुभकामनाएं। अब सबसे विदा लेता हूं। इंकलाब जिंदाबाद।''

(स्रोत : मैगजीन ''दस्तक'' जनवरी-अप्रैल 2023)

पृष्ठ 33 का शेष

उन के स्वागत को आगे बढ़ी तो उनकी जेठानी ने पीछे से बाल पकड़ कर खींच लिए और बोलीं, ''विधवा हो कर बेटे का अपशकुन करने चली है।'' बरामदे के खंभे से चिपटी रोती बुआ का चेहरा मैं आज भी नहीं भुला सकी हूँ।

हमारी कूपमंडूकता

यही तो दुखांत है हमारा। हम शक्षित हो कर भी कूपमंडूक बने हुए हैं। किसी भी नियम या मान्यता का मूल रूप सार्थक और कल्याणकारी हो सकता है। पर समय के साथ-साथ बदलती परिस्थितियों व परिवेश में उन परंपराओं को विवेक और तर्क की कसौटी पर रख उन में आवश्यकतानुसार संशोधन, परिवर्तन या परिवर्तन कर उन्हें पुनः उतना ही कल्याणकारी बना लिया जाना चाहिए। इसी में समाज का हित है।

देखा जाए तो इस का सर्वाधिक उत्तरदायित्व महिलाओं पर ही है, क्योंकि इस प्रकार की प्रथाओं को कुरूप बनाने और लकीर पीटने में स्त्रियों का ही बड़ा हाथ होता है।

(स्रोत : पुस्तक ''तर्क से काटिए अंधविश्वासों का जाल'', संपादक : राकेश नाथ)

पृष्ठ-19 का शेष

भरोसे नहीं रहा बल्कि अपनी आवश्यकता के अनुसार लोहा हासिल करने के लिए प्रकृति के साथ जूझते हुए उसने इसके नियमों को जाना और अपनी जरूरत के लिए उस जानकारी का इस्तेमाल किया।

इस प्रक्रिया में मनुष्य प्रकृति को भी बदलता गया और ख़ुद को भी। यानी मनुष्य अब अपने अर्जित ज्ञान और श्रम के बल पर खुद तैयार किये हुए लोहे को भी इस्तेमाल करने योग्य हो गया। और इसी समय से लौह युग शुरू हुआ। उसके पहले लोग लकड़ी, पत्थर और हड्डियों से बने औज़ारों और हथियारों पर निर्भर थे। लोहे के औज़ारों के इस्तेमाल ने मानव समाज के विकास की गति बहुत तेज़ कर दी और मानव समाज के इतिहास को बदल डाला।

आज के समय में तो हमारे पास उन्नत मशीनें हैं और इतना विकसित विज्ञान है कि हम आसानी से धरती के गर्भ में छिपे लौह अयस्कों को ढूंढ सकते हैं लेकिन पुराने ज़माने में लौह अयस्कों को ढूँढने का एक बड़ा अजीब तरीक़ा था।

(स्त्रोत : ''कोंपल'' अक्तूबर-दिसम्बर 2022)

भगत सिंह और साथियों के ''इंकलाब'' के बारे में विचार

- मुनेश त्यागी

वर्तमान समय में क्रांति यानी इंकलाब को लेकर जनता के बीच बहुत सारी भ्रांतियां हैं। कुछ लोग मारने पीटने, घर जलाने, आग लगाने, रेल रोकने, रेल में आग लगाने, बस जलाने और आपसी लड़ाई झगड़े और मारपीट को क्रांति मानने लगे हैं। मगर यह क्रांति नहीं है। हमारे शहीदों के विचारों में क्रांति के क्या अर्थ थे? वे क्रांति यानी इंकलाब से क्या मायने लगाते थे? उनके लिए क्रांति का क्या अर्थ था ? इसे जानना बहुत जरूरी है और रोचक भी।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में क्रांति यानि इंकलाब के विषय में हमारे शहीदों द्वारा बहुत कुछ कहा गया है और बहुत कुछ लिखा गया। हिंदुस्तानी समाजवादी गणतंत्र संघ यानी एच.एस.आर.ए. के अनेक सदस्यों ने विभिन्न तरह से क्रांति शब्द का प्रयोग किया है, मगर भगत सिंह और उनके साथियों ने अपने विभिन्न दस्तावेजों में क्रांति को वैज्ञानिकता प्रदान करने की कोशिश की है। उनके लिए ''इंकलाब जिंदाबाद'' क्या था? क्रांति यानी इंकलाब के क्या मायने थे? क्रांति से उनकी क्या मुराद थी? आइए उन्हीं के शब्दों में जाने कि क्रांति यानी इंकलाब से उनका क्या मकसद था, क्या मतलब था ?

18 दिसंबर 1928 को लाहौर में 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना'' के नाम से बांटे गए पर्चे में क्रांति के बारे में कहा गया है, ''हमारा उद्देश्य एक ऐसी क्रांति से है जो मनुष्य के शोषण का अंत कर देगी।''

22 दिसंबर 1929 को मॉडर्न रिव्यू के संपादक के नाम अपने पत्र में शहीद भगत सिंह लिखते हैं 'इंकलाब जिंदाबाद के नारे को सब लोगों तक पहुंचाने का कार्य हमारे हिस्से में आया है। इस नारे की रचना हम लोगों ने नहीं की है। यही नारा रूस के क्रांतिकारी आंदोलन में प्रयोग किया गया है। प्रसिद्ध समाजवादी लेखक अपटन सिनक्लेयर ने अपने उपन्यासों 'बॉस्टन' और 'आइल' में यही नारा अपने क्रांतिकारी पात्रों के मुख से प्रयोग कराया है।''

भारत के क्रांतिकारी इतिहास में ''इंकलाब जिंदाबाद'' और संपूर्ण आजादी के नारे का निर्माण मौलाना हसरत मोहनी ने 1921 में किया था। हालांकि इससे पहले भी इंकलाब का नारा फ्रांसीसी क्रांति और रूसी क्रांति में उठाया जा चुका था, लगाया जा चुका था। मगर भारत में इस नारे का इस्तेमाल एच. एस. आर. ए. यानी हिन्दुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्यों ने किया था और बाद में भगत सिंह और उसके साथियों ने इंकलाब जिंदाबाद के नारे को अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ भारत को आजादी दिलाने और अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति पाने के लिए प्रचारित प्रसारित किया और उसे किसानों, मजदूरों, नौजवानों, छात्रों का आम नारा बना दिया और आज भी भारत में यह नारा संघर्षशील जनता का सबसे बुलंद नारा बना हुआ है।

8 अप्रैल 1929 को असैंबली हॉल में फेंके गए पर्चे में लिखा गया है... ''क्रांति द्वारा सबको समानता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रांति में कुछ रक्तपात जरूरी है।''

6 जून 1929 को दिल्ली के सेशन जज लियोनाई मिडिल्टन की अदालत में दिए गए ऐतिहासिक बयान में क्रांति के बारे में भगत सिंह ने बयान दिया था.... ''क्रांति के लिए खूनी लड़ाइयां अनिवार्य नहीं है, वह बम और पिस्तौल का संप्रदाय नहीं है, क्रांति हमारा अभिप्राय है, अन्याय पर आधारित मौजूदा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन।''

''देश को एक ऐसे अमूल परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं, उनका कर्त्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धांतों के आधार पर समाज के पुनर्निर्माण करें... क्रांति से हमारा मतलब एक ऐसी समाज व्यवस्था से है जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा।''

भूख हड़ताल के दौरान सुखदेव को लिखे पत्र में भगत सिंह लिखते हैं.... ''क्रांति तो केवल सतत कार्य करने से, प्रयत्नों से, कष्ट सहन करने एवं बलिदानों से ही उत्पन्न की जा सकती है और की जाएगी'' और ''क्रांति की तलवार विचारों की शान पर ही तेज होती है।''

19 अक्तूबर 1929 को पंजाब छात्र संघ को जेल से भेजे अपने एक पत्र में भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त नौजवानों को आह्वान करते हैं.... ''नौजवानों को क्रांति का संदेश देश के कोने कोने में पहुंचाना है। फैक्ट्री, कारखानों के क्षेत्रों

में, गंदी बस्ती और गांव की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में क्रांति की अलख जगानी है जिससे आजादी आएगी और तब मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असंभव हो जाएगा।''

हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के घोषणापत्र में भगवती चरण वोहरा क्रांति के बारे में लिखते हैं... ''क्रांति एक ऐसा करिश्मा है जिसे प्रकृति स्नेह करती है और जिसके बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती... क्रांति ईश्वर विरोधी तो हो सकती है, लेकिन मनुष्य विरोधी नहीं।''

''.... क्रांति एक नियम है, क्रांति एक आदेश है और क्रांति एक सत्य है।'' क्रांति के बिना सुव्यवस्था, कानूनपरस्ती और प्यार स्थापित नहीं किया जा सकता।''

26 जनवरी 1930 को ''बम का दर्शन'' में भगत सिंह लिखते हैं.... ''क्रांति पूंजीवाद, वर्गवाद और कुछ लोगों को विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अंत कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करेगी। उससे नए राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा। क्रांति से सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मजदूरों तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब अवांछित तत्वों को समाप्त कर देगी जो देश को राजनीतिक शक्ति को हथियाये बैठे हैं और अंत में क्रांति से ही देश को समाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।''

ड्रीमलैंड की भूमिका में भगत सिंह लिखते हैं...''हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि क्रांति का मतलब मात्र उथल-पुथल या खूनी संघर्ष नहीं है। जब हम क्रांति की बात करते हैं तो उसमें मौजूदा हालत को अर्थात् सरकार को पूरी तरह विध्वंस करने के बाद समाज के व्यवस्थित पुनर्गठन के कार्यक्रम की बात निहित है।''

2 फरवरी 1931 को ''क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसौदा'' में क्रांति के विषय में भगत सिंह की विलक्षणता देखिए.... ''इंकलाब का अर्थ मौजूदा सामाजिक ढांचे में पूर्ण परिवर्तन और समाजवाद की स्थापना है। इसके लिए हमारा पहला कदम ताकत हासिल करना है। वास्तव में राज्य यानि सरकारी मशीनरी, शासक वर्ग के हाथों में अपने हितों की रक्षा करने और उन्हें आगे बढ़ाने का यंत्र ही हैं। हम इस यंत्र को छीनकर अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं। हमारा आदर्श है... नए ढंग की सामाजिक रचना यानी मार्क्सवादी ढंग से समाज की रचना।''

''हम समाजवादी क्रांति चाहते हैं इसके लिए बुनियादी जरूरत राजनीतिक क्रांति की है। राजनीतिक क्रंति का अर्थ यानी राजनीतिक सत्ता और ताकत का, अंग्रेजी हाथों से भारतीय हाथों में आना है और वह भी उन भारतीयों के ''हाथों में जिनका अंतिम लक्ष्य हमारे लक्ष्य से मिलता हो।'' ''क्रांति उनके हित में है और उनकी अपनी है सर्वहारा, श्रमिक वर्ग की क्रांति, सर्वहारा के लिए।''

....''क्रांति करना बहुत कठिन है, यह एक आदमी की ताकत के बस की बात नहीं है और ना ही किसी निश्चित तारीख को आ सकती है। यह तो विशेष सामाजिक, आर्थिक, परिस्थितियों से पैदा होती है और जनता को उसके लिए तैयार करना होता है।''

''पार्टी कार्यकर्त्ताओं को तैयार करने के लिए अध्ययन केंद्र खोलने चाहिए, पंफलेट, पुस्तकें, मैगजीन छपने चाहिएं। कक्षा में भाषण होने चाहिएं।.... किसानों और मजदूरों का समर्थन हासिल करने के लिए प्रचार जरूरी है पार्टी का नाम कम्युनिस्ट पार्टी हो।.... चेतना ही नहीं, वर्ग-चेतना भी पैदा करनी होगी। समाजवादी सिद्धान्तों के बारे में जनता को सचेत बनाने के लिए सादा और स्पष्ट लेखन बेहद जरूरी है।''

''....क्रांति के लिए जरूरत है निरंतर संघर्ष करने, कष्ट सहने और कुर्बानी भरा जीवन जीने की। व्यक्तिवाद खत्म करो, व्यक्तिगत सुख के सपने उतार कर रख दो। इंच-इंच कर आगे बढ़ो। इसके लिए हिम्मत, दृढ़ता और मजबूत इरादे की जरूरत है। कष्ट और कठिनाइयों में आपकी हिम्मत न कांपे। कोई भी पराजय, धोखा, आपका दिल नहीं तोड़ सके। कष्टों के सामने आपका क्रांतिकारी जोश ठंडा न पड़े, कष्ट सहने और कुर्बानी करने के सिद्धांत से आप सफलता हासिल करेंगे।''

भगत सिंह से अपनी अंतिम मुलाकात में उनके वकील प्राणनाथ मेहता ने भगत सिंह से पूछा कि वह देश की जनता के लिए क्या संदेश देना चाहते हैं तो इस पर भगत सिंह ने खुश होकर कहा था कि वे ''इंकलाब जिंदाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के लिए काम करें और भारत में ऐसे ही समाज की स्थापना करें जिसमें शोषण, जुल्म, अन्याय और भेदभाव ना हों।''

शेष पृष्ठ 4 पर

जानलेवा बनता तस्वीरों का जुनून

– योगेश कुमार गोयल

अलग–अलग भंगिमा में 'सेल्फी' लेकर सोशल मीडिया पर डालने का शुगल न केवल भारत, बल्कि दुनिया भर में लोगों के लिए जानलेवा साबित हो रहा है। खासकर नौजवान एक अच्छी 'सेल्फी' के लिए कुछ भी करने को तत्पर दिखते हैं। तमाम नियम–कायदों की अनदेखी करते हुए कहीं ये चलती ट्रेन के आगे 'सेल्फी' लेने के लिए जान जोखिम में डालते दिखते हैं, तो कहीं अन्य खतरनाक जगहों पर। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में नववर्ष पर अपने कुछ रिश्तेदारों के साथ सिरसी प्रपात पर पिकनिक मनाने गया एक युवक 'सेल्फी' लेते हुए मौत की नींद सो गया। वह ऊंचाई पर चढ़कर सेल्फी के लिए भंगिमा बना रहा था कि अचानक पैर फिसलने से खाई में सिर के बल जा गिरा। मध्यप्रदेश के दमोह जिले के सिद्ध क्षेत्र में एक जनवरी को कुछ दोस्तों के साथ पिकनिक मनाने गया पच्चीस साल का एक युवक भी सेल्फी लेते समय संतुलन बिगड़ने से एक पहाड़ी से नीचे गहराई में जा गिरा, जिसका शव पुलिस को पत्थरों के बीच मिला। उत्तराखण्ड के खटीमा में शारदा नहर में सेल्फी लेते समय एक युवक नहर में गिर गया, जिसे बचाने के लिए नहर में कूदा उसका चचेरा भाई पानी के तेज बहाव में बह गया, जबकि नहर में गिरा युवक पेड़ की टहनी पकड़ कर बच गया। हरियाणा के रोहतक में सत्रह साल की एक किशोरी सेल्फी लेते हुए पुल से नीचे गिर गई। किशोरी स्कूटी से पुल पर आई थी और वहां सेल्फी ले रही थी कि अचानक उसका संतुलन बिगड़ा और वह पुल से नीचे गिर गई। वह गंभीर रूप से घायल हो गई।

इटली के वेनिस में भी 14 दिसंबर को सेल्फी के चक्कर में एक गोंडोला बोट पलट गई और पर्यटकों का पूरा समूह वेनिस नहर में गिर गया था। दरअसल, जब गोंडोलियर एक पुल के नीचे से गुज़र रहा था तो उसने नाव पर बैठे लोगों से स्थिर रहने को कहा था। लोग उस समय सेल्फी ले रहे थे और उन्होंने गोंडोलियर की बातों को नजरअंदाज़ कर दिया। चेतावनी के बावजूद सेल्फी लेते लोगों का सारा भार एक तरफ हो गया और नाव बेहद ठंडी नहर में पलट गई।

रेल की पटरियों या जोखिम वाली जगहों पर सेल्फी खींचते हुए जान गंवा देने के बार–बार सामने आ रहे दर्दनाक मामले सवाल खड़े करते हैं कि आखिर जागरूकता अभियानों के बावजूद युवा वर्ग पर सेल्फी का ऐसा जुनून क्यों सवार हो रहा है। क्यों कई बार खतरनाक करतब करते हुए जोखिम भरी स्थितियों में सेल्फी लेते हुए युवा अपनी जान दांव पर लगा रहे हैं। चिंता की बात है कि सेल्फी लेते हुए जान गंवा देना अब दुनिया भर में दुर्घटनाओं की एक श्रेणी में शामिल हो चुका है। हालांकि सेल्फी के प्रति युवा वर्ग में बढ़ते जुनून के मद्देनजर कुछ राज्यों में इस पर अंकुश लगाने के उपाय किए गए हैं। युवा वर्ग में नए और खतरनाक स्थानों पर सेल्फी लेने की बढ़ती होड़ तथा ऐसी घटनाओं की निरंतर बढ़ती संख्या से चिंतित केन्द्र सरकार द्वारा सुरक्षा के लिहाज से तमाम राज्य सरकारों को पर्यटन केंद्रों पर ऐसे हादसों के प्रति संवेदनशील स्थानों की पहचान करने, वहां सुरक्षा संकेत लगाने और ज्यादा खतरे वाली जगहों पर बाड़ लगाने जैसे उपाय करने की सलाह दी गई थी, लेकिन उसके बावजूद लगातार सेल्फी से युवाओं की मौतों के मामले चिंता पैदा करते हैं।

'सेल्फी' की सनक युवाओं को कुंठा और हीनभावना का शिकार भी बना रही है। इस सनक को दुनिया भर में 'सोशल मीडिया' ने बढ़ावा दिया है। मनोचिकित्सकों ने 'सेल्फी' को एक मनोरोग मान लिया है। उनके मुताबिक 'सेल्फीसाइटिस' एक ऐसी स्थिति है, जिसमें व्यक्ति 'सेल्फी' लेकर सोशल मीडिया पर नहीं डालता तो उसे बेचैनी होने लगती है। इस सनक का लोगों के रिश्तों पर भी असर पड़ रहा है।

आइ.आई.टी. दिल्ली में सहायक प्रोफेसर और मी, माइसेल्फ ऐंड माई किल्फी' नामक पुस्तक के सहलेखक पोन्नूरंगम कुमारगुरू का कहना है कि भारत एकमात्र ऐसा देश है, जहां सेल्फी के दौरान कई लोगों की मौत आम है। ऐसी अधिकांश मौतें पहाड़ी से गिरने, पानी में डूबने या ट्रेन

से कटने के कारण होती हैं। उनका कहना है कि स्मार्टफोन और इंटरनेट की बढ़ती पहुंच तथा फेसबुक, इंस्टाग्राम जैसे माध्यमों पर अपनी अनूठी सेल्फी डालने की ललक ही युवाओं को खतरे से खेलने के लिए प्रेरित करती है। नई दिल्ली स्थित एम्स तथा आइ.आइ.टी. कानपुर के शोधकर्त्ताओं द्वारा अखबारों में छपी खबरों के आधार पर किए गए एक अध्ययन के मुताबिक अक्तूबर 2011 से नवंबर 2017 के बीच दुनिया भर में सेल्फी लेने के दौरान 259 मौतें हुईं, जिनमें से 158 मौतें भारत में हुईं थीं। हालांकि 'जर्नल आफ फेमिली मेडिसिन ऐंड प्राइमरी केयर' में छपी इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि ऐसी घटनाओं में मौतों का आंकड़ा ज्यादा हो सकता है, क्योंकि दूरदराज के इलाकों में होने वाली ऐसी मौतों की खबरें सामने नहीं आतीं।

आश्चर्य की बात है कि तमाम जागरूकता अभियानों और खतरे का भान होने के बावजूद युवाओं पर खतरों से खेलकर सेल्फी लेकर सोशल मीडिया पर चस्पां करने का ऐसा जुनून सवार रहता है कि तेज रफ्तार में सामने से आती ट्रेन की सीटी सुनने पर भी वे पटरी से नहीं हटते और जान गंवा बैठते हैं। एक अध्ययन में यह खुलासा हुआ है कि सबसे अधिक सेल्फी महिलाएं लेती हैं और सबसे खतरनाक जगहों पर सेल्फी लेने के मामले में युवा सबसे आगे रहते हैं। इस अध्ययन के अनुसार सेल्फी लेने के दौरान जितने भी लोगों की मौत हुई, उनमें युवाओं की संख्या करीब तीन-चौथाई है, जिनकी मौतों का कारण पानी में डूबना, ट्रेन की टक्कर, ऊंचाई से गिरना और अन्य दुर्घटनाएं हैं।

सेल्फी 'स्मार्टफोन' की क्रांतिकारी तकनीक की देन है, जिसमें सामने लगे कैमरे की सबसे अहम भूमिका होती है। गूगल सर्वे के मुताबिक स्मार्टफोन के इस दौर में युवक-युवतियां अब प्रतिदिन औसतन ग्यारह घंटे फोन पर बिताते और दिन भर में औसतन चौदह सेल्फी लेते हैं। युवाओं में सेल्फी के बढ़ते जुनून को लेकर चिकित्सकों का कहना है कि अधिक सेल्फी लेने से चेहरे पर झुर्रियां जल्दी आती हैं। सेल्फी के बढ़ते जुनून को इसी से समझा जा सकता है कि दुनिया भर में प्रतिदिन 9.4 करोड़ से भी ज्यादा सेल्फी ली जाती है। चिंता की बात है कि युवाओं में खतरनाक जगहों और स्थितियों में सेल्फी को लेकर दीवानगी बढ़ रही है और भारत अब 'सेल्फी डेथ कंट्री' बनता जा रहा है। दरअसल, 'शेयर, लाइक और कमेंट' की अजीबोगरीब चाहत में युवाओं को खतरनाक जगहों पर सेल्फी लेने और फिर उसे तुरंत सोशल साइटों पर डालने की इतनी जल्दी होती है कि एक लापरवाही में बदल जाती है और ऐसे युवा अक्सर या तो किसी दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं या मौत के मुंह में समा जाते हैं। ऐसे में पूरी दुनिया के समक्ष चिंता का विषय यही है कि युवाओं में सेल्फी के इस बढ़ते जुनून को रोका कैसे जाए ?

माना कि रोजमर्रा की एकरस जिंदगी में नयापन या मनोरंजन मानसिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी होता है और सेल्फी का शौक भी बुरा नहीं माना जा सकता, लेकिन यह उस हद तक न हो, जहां जिंदगी ही मुसीबत में घिर जाए। ऐसी सेल्फी या ऐसा जानलेवा रोमांच किस काम का कि अपनी उस तस्वीर को जिंदगी में दोबारा कभी देखने के लिए ही न बचें। 'सेल्फी' की सनक युवाओं को कुंठा और हीनभावना का शिकार भी बना रही है। इस सनक को दुनिया भर में 'सोशल मीडिया' ने बढ़ावा दिया है। मनोचिकित्सकों ने 'सेल्फी' को एक मनोरोग मान लिया है। उनके मुताबिक 'सेल्फीसाइटिस' एक ऐसी स्थिति है, जिसमें व्यक्ति 'सेल्फी' लेकर सोशल मीडिया पर नहीं डालता तो उसे बेचैनी होने लगती है। इस सनक का लोगों के रिश्तों पर भी असर पड़ रहा है।

स्रोत : जनसत्ता (12 जनवरी 2024)

पृष्ठ 38 का शेष

यही स्थिति उस समय भी रहेगी जब तारों की लम्बाई का अनुपात 2:3 अथवा 4 : 3 हो। संगीत की शब्दावली में 2:1 का अर्थ उस अष्टक से है, जो वाद्ययंत्र की कुंजियों को जोड़ता है। 3 : 2 शुद्ध पंचम है; 4 : 3 चतुर्थ शुद्ध स्वर है। संगीतज्ञ स्वरों के इस मेल को शुद्धतम ध्वनियां मानते हैं।

दो सौ वर्ष बाद एरिस्टॉटल (अरस्तू) ने पाइथोगरियन परम्परा के बारे में कहा था, ''इन लोगों ने अपना जीवन ही गणित को समर्पित कर दिया था और इन्हीं के कारण गणित की प्रगति सम्भव हुई। इस वातावरण में पलने और बढ़ते हुए इनका विचार यह बन गया था कि संसार की हर एक वस्तु गणित के ही सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिए।''

आज का वैज्ञानिक विश्व के गणितीय सूत्रों की मान्यताओं को आबद्ध करने में लगे हुए हैं।

(स्रोत : पुस्तक ''विश्व के महान् वैज्ञानिक'')

विज्ञान में अरुचि के पीछे

– प्रमोद भार्गव

कुछ समय पहले एक अध्ययन में यह सामने आया है कि दक्षिण भारत के विद्यार्थी कला वर्ग के विषयों में ज्यादा रुचि लेते हैं। केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय की ओर से कराए गए अध्ययन के अनुसार, वर्ष 2022 में कक्षा 11-12 के विभिन्न राज्य शिक्षा मंडलों से प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि तमिलनाडू, तेलंगाना और आंध्र प्रदेश में क्रमशः 1.53, 2.01 और 2.19 फीसद विद्यार्थियों ने कला के विषयों को महत्त्व दिया। जबकि पश्चिम बंगाल, पंजाब, हरियाणा, गुजरात और झारखंड में विज्ञान विषय क्रमशः 13.42, 13.71, 15.63, 18.33 और 22.9 फीसद विद्यार्थियों की पहली पसंद रहा। इसके ठीक विपरीत कला को गुजरात में 81.5 फीसद, बंगाल में 78.94, पंजाब में 72.89, हरियाणा में 76.76 और राजस्थान में 71.23 फीसद विद्यार्थियों ने प्राथमिकता दी।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद यानी एन.सी.ई.आर.टी. का सहयोगी विभाग 'परख' इन आंकड़ों का सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक विश्लेषण करेगा। मगर समाज और शिक्षा शास्त्रियों को भी इन आंकड़ों पर विचार करने की जरूरत है। एक ऐसे समय में, जब विज्ञान व तकनीक व्यक्ति और समाज को हर स्तर पर प्रभावित कर रहे हैं और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का हस्तक्षेप निरंतर बढ़ रहा हो, तब विज्ञान और कला विषयों को लेकर यह अनुपात चिंताजनक क्यों है? यह विसंगति इस तथ्य को भी दर्शाती है कि भारत में वैज्ञानिकों की कमी के मूल में क्या कारण हैं और मौलिक आविष्कार के क्षेत्र में पेटेंट की संख्या बढ़ने की गति धीमी क्यों है।

विज्ञान के क्षेत्र को प्रोत्साहित करने की सरकार की अनेक कोशिशों के बावजूद देश के लगभग सभी शीर्ष संस्थानों में वैज्ञानिकों की कमी बनी हुई है। वर्तमान में देश के सत्तर प्रमुख शोध-संस्थानों में 3200 वैज्ञानिकों के पद खाली हैं। बंगलुरु के वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एस.आई.आर.) से जुड़े संस्थानों में सबसे ज्यादा 177 पद रिक्त हैं। पुणे की राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला में 123 वैज्ञानिकों के पद खाली हैं। देश के इन संस्थानों में यह स्थिति तब है, जब सरकार ने पदों को भरने के लिए कई आकर्षक योजनाएं शुरू की हैं। इनमें शोध के लिए सुविधाओं का भी प्रावधान है। साथ ही विदेश में कार्यरत वैज्ञानिकों को स्वदेश लौटने पर आकर्षक वेतन-भत्ते के प्रस्ताव दिए जा रहे हैं। इसके बावजूद न तो विद्यार्थियों में वैज्ञानिक बनने की रुचि पैदा हो रही है और न ही विदेश से वैज्ञानिकों के लौटने का सिलसिला शुरू हो पाया है। इसकी पृष्ठभूमि में एक तो वैज्ञानिकों में यह भरोसा पैदा नहीं हो रहा है कि जो प्रस्ताव दिए जा रहे हैं, ये निरंतर बने रहेंगे, दूसरे, नौकरशाही की ओर से कार्यप्रणाली में अड़ंगों की प्रवृत्ति भी विश्वास पैदा करने में बाधा बन रही है।

वैज्ञानिकों को हम खिलाड़ी, अभिनेता, नौकरशाह और राजनेताओं की तरह आदर्श नहीं बना पा रहे हैं। कई स्तर पर विज्ञान से ज्यादा महत्त्व खेल को दिया जाता है। तवज्जो न मिलना भी वैज्ञानिक प्रतिभाओं के पलायन का एक बड़ा कारण है। जाहिर है, हमें ऐसा माहौल रचने की जरूरत है, जो मौलिक अनुसंधान एवं शोध-संस्कृति का पर्याय बने।

मौजूदा परिदृश्य में कोई भी देश वैज्ञानिक उपलब्धियों से ही सशक्त और सक्षम बन सकता है। मानव जीवन को भी यही उपलब्धियां सुखद और समृद्ध बनाए रखती हैं। भारत में युवा प्रतिभाओं या शिक्षित बेरोजगारों की भरमार है, इसके बावजूद वैज्ञानिक बनने या मौलिक शोध में रुचि लेने वाले युवाओं की संख्या कम है। इसकी प्रमुख वजहों में एक तो यह है कि वैज्ञानिकों को हम खिलाड़ी, अभिनेता, नौकरशाह और राजनेताओं की तरह आदर्श नहीं बना पा रहे हैं। कई स्तर पर विज्ञान से ज्यादा महत्त्व खेल को दिया जाता है। तवज्जो न मिलना भी

वैज्ञानिक प्रतिभाओं के पलायन का एक बड़ा कारण है। जाहिर है, हमें ऐसा माहौल रचने की जरूरत है, जो मौलिक अनुसंधान एवं शोध-संस्कृति का पर्याय बने। इसके लिए हमें उन लोगों को भी महत्त्व देना होगा, जो अपने देशज ज्ञान के बूते आविष्कार में तो लगे हैं, लेकिन अकादमिक ज्ञान न होने के कारण उनके आविष्कारों को वैज्ञानिक मान्यता नहीं मिल पाती है। दरअसल, हमारे यहां विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सरकार का प्रभुत्व है, लिहाजा उसमें जोखिम उठाने की इच्छाशक्ति का अभाव है। जबकि, वैज्ञानिक अनुसंधानों की बुनियाद कल्पनाशीलता और पारदर्शिता पर टिकी होती है। जिसे बिना जोखिम उठाए अंजाम तक नहीं पहुंचाया जा सकता।

आज वैश्वीकरण के दौर में विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। मगर उदारवादी अर्थव्यवस्था का दूसरा दुखद पहलू यह है कि हमारे उच्च दर्जे के विज्ञान शिक्षा संस्थान प्रतिभाओं को आकर्षित ही नहीं कर पा रहे हैं। हमारी ज्यादातर प्रतिभाएं या तो विदेश पलायन कर जाती हैं या इंजीनियरिंग के साथ एम.बी.ए. करके निजी बैंकों, बीमा कंपनियों या प्रबंधन संस्थानों से जुड़ जाती हैं। यानी जो प्रतिभावान लोग बुनियादी शिक्षा हासिल किए होते हैं, वे उसके विपरीत कार्य-संस्कृति में काम करने को विवश होते हैं। क्या यह विरोधाभासी कार्य संस्कृति प्रतिभा के साथ छल नहीं है?

एक समय था जब विज्ञान संस्थानों में धन की कमी थी। मगर, अब इन संस्थानों के पास धन और संसाधनों की कमी नहीं रह गई है। बावजूद इसके, युवा विज्ञान से किनारा कर रहे हैं तो हमारी वैज्ञानिक कार्य-संस्कृति में ही कहीं कोई कमी हो सकती है। आज जो शोध हो रहे हैं, उनमें पूर्व में हो चुके कार्यों को अदल-बदल कर दोहराए जाने की प्रवृत्ति ज्यादा दिखती है, जो वास्तव में चिंताजनक है। दुनिया के शीर्ष दो सौ विश्वविद्यालयों में भारत के संस्थान आज भी जगह तलाश रहे हैं।

यहां गौरतलब है कि वर्ष 1930 में जब भारत में फिरंगी हुकूमत थी, तब देश में वैज्ञानिक शोध का बुनियादी ढांचा न के बराबर था। विचारों को रचनात्मकता देने वाला साहित्य भी अपर्याप्त था। अंग्रेजी शिक्षा भी शुरूआती दौर में थी। बावजूद इसके सी.वी. रमन ने साधारण देसी उपकरणों के सहारे देशस ज्ञान व भाषा को आधार बनाकर काम किया और भौतिक विज्ञान में देश को नोबेल दिलाया। सत्येंद्र नाथ बसु ने आईस्टीन के साथ काम किया। मेघनाद साहा, रामानुजन, पी.सी.रे. और होमी जहांगीर भाभा ने अनेक उपलब्धियां हासिल कीं। ए.पी.जे. अब्दुल कलाम और के. शिवम जैसे वैज्ञानिक भी मातृभाषा में आरंभिक शिक्षा लेकर महान वैज्ञानिक बने हैं। जगदीशचंद्र बसु ने पेड़ों में जीवन की खोज खुद के बनाए उपकरणों से करके दुनिया को आश्चर्य में डाल दिया था। मगर अब उच्च शिक्षा में तमाम गुणवत्तापूर्ण सुधार होने के बावजूद इस तरह की नई उपलब्धियां हासिल कर पाना मुमकिन नहीं हो रहा है। विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में हम पश्चिम के प्रभुत्व से छुटकारा नहीं पा रहे। हालांकि भारत के अंतरिक्ष अभियान इस दिशा में एक अपवाद के रूप में सामने आए हैं, जिनमें स्वदेशी तकनीक का इस्तेमाल हो रहा है।

दरअसल, बीते 75 वर्षों में हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसी अवधारणाओं का शिकार भी हो रही है, जिसमें समझने-बुझने व तर्कशीलता की बजाये रटने की पद्धति विकसित हुई है। दूसरे, संपूर्ण शिक्षा को विचार व ज्ञानोन्मुखी बनाने की बजाय नौकरी अथवा करिअर उन्मुखी बना दिया गया है। हमारी शिक्षा पद्धति में कल्पनाशील वैचारिक स्रोतों को तराशने का अध्यापकीय कौशल भी कमोवेश नदारद है। अंग्रेजी का दबाव भी नैसर्गिक प्रतिभाओं को कुंठित कर रहा है। अमेरिका, रूस, चीन और जापान जैसे जिन देशों से हमें सबक लेने की जरूत है कि उनकी विज्ञान व तकनीकी शिक्षा के माध्यम अपनी मातृभाषाएं हैं। यहां अनुसंधान और आविष्कार के काम विश्वविद्यालय स्तर पर भी शुरू हो जाते हैं। अगर कोई गैर अकादमिक शिक्षा प्राप्त किसी आविष्कार को साकार रूप देता है, तो उसकी उपलब्धि को विज्ञान शोध संस्थान हाथों-हाथ ले लेते हैं। जबकि हमारे यहां ऐसे कार्यों को प्रोत्साहन देने या मान्यता देने को कार्य-संस्कृति का अभाव है। देश में जब तक वैज्ञानिक कार्य-संस्कृति के अनुरूप माहौल नहीं बनेगा, तब तक दूसरे देशों से प्रतिस्पर्धा में आगे निकलना मुश्किल है। साथ ही हमारी युवा प्रतिभाएं भी वैज्ञानिक बनने की दिशा में आगे नहीं बढ़ पाएंगी। विज्ञान विषय में अरुचि को दर्शाने वाला अध्ययन इस तथ्य का प्रमाण है।

दाभोलकर की वैचारिक दुनिया

– प्रेम कुमार मणि

मैं उम्मीद करता हूँ आप डॉ नरेंद्र दाभोलकर को भूले नहीं होंगे. आज से दस साल पहले, तारीख 20 अगस्त 2013 को, उनकी निर्मम हत्या कर दी गई थी. वह महाराष्ट्र के पुणे शहर के थे. पेशे से फिजिसियन और 'साधना' पत्रिका के यशस्वी संपादक। उनकी खास पहचान सामाजिक अन्धविश्वास के खिलाफ उनके द्वारा चलाए गए अभियान को लेकर थी। वह विद्वान और निर्भीक लेखक के साथ समाजवैज्ञानिक भी थे, जिन की राय थी कि वैज्ञानिक परिदृष्टि के साथ ही लोकतान्त्रिक समाज और राष्ट्र का निर्माण संभव है. आस्था और अन्धविश्वास समाज में कई तरह के अवगुंठन पैदा करते हैं, जिससे समाज की विवेक–शक्ति मारी जाती है और फिर पूरा समाज पतनशील होता है. उनके विचारों से एक तबका इतना भयभीत हुआ कि उन्हें उनकी हत्या से कम कोई दंड वाजिब नहीं लगा. यह कोई संयोग नहीं था कि उनकी हत्या के बाद गोविन्द पनसारे, एमएम कलबुर्गी और गौरी लंकेश की हत्या हुई. पिछले अगस्त 2023 में डॉ दाभोलकर की बेटी मुक्ता दाभोलकर ने सुप्रीम कोर्ट को बताया कि ये तमाम हत्याएं एक ही कड़ी में की गई हैं. इनका अन्तर्सम्बन्ध बनता है. वर्ष 2020 में कोल्हापुर सेशन कोर्ट में स्पेशल पब्लिक प्रोसिक्यूटर हर्षद नीलाम्बर ने बताया कि ये तमाम हत्याएं 'सनातन' नामक एक संस्था से जुड़े लोगों द्वारा की गई है. इसे लेकर भारतीय समाज में जो चिंता होनी चाहिए थी, वह नहीं है. यह दुर्भाग्यपूर्ण है.

मैं डॉ दाभोलकर पर अपनी बात केंद्रित करना चाहूंगा. 1945 में पुणे शहर में जन्मे नरेंद्र अच्युत दाभोलकर ने मेडिकल साइंस की पढाई की. वह सामाजिक सुधारों के समर्थक भी थे, जिसकी महाराष्ट्र में सुदीर्घ परम्परा रही है. समाज सुधार के ख्याल से प्रसिद्ध समाजवादी लेखक–चिन्तक साने गुरू जी (सदाशिव पांडुरंग साने, 1899 – 1950) 'साधना' नाम से एक पत्रिका निकालते थे. यह पत्रिका 1948 में आरम्भ हुई थी. 1998 में इस पत्रिका के पचास साल होने जा रहे थे. इस अवसर पर डॉ नरेंद्र दाभोलकर और जयदेव डोले को इस पत्रिका का संपादक बनाया गया. डोले तो छह महीने बाद ही इस पत्रिका से अलग हो गए, लेकिन दाभोलकर ने मृत्युपर्यन्त सम्पादकीय जिम्मेदारी निभाई. उनके सम्पादकीय लेखों के संकलन पुस्तक रूप में प्रकाशित और मराठी में खूब प्रशंसित भी हुए. मुझे प्रसन्नता है कि राजकमल प्रकाशन के सार्थक उपक्रम ने इनका हिंदी अनुवाद एक त्रयी में खूबसूरत जिल्दों में प्रकाशित किया है. ये किताबें हैं–

1 – अंधश्रद्धा की गुत्थी

2 – सोचिये तो सही

3 – विचार से विवेक

ये किताबें जब मेरे पास आई हैं,तब हमारे उत्तरभारतीय हिंदी समाज में प्राण–प्रतिष्ठा–उत्सव व्याप्त है. इस पर कोई टिप्पणी बेमानी है. एक तबके द्वारा कोशिश यही हो रही है कि आस्था और अन्धविश्वास का ऐसा तूफ़ान खड़ा कर दिया जाये कि लोकतंत्र का चिराग बुझ जाये. आस्था के नाम पर अंधविश्वास की प्रतियोगिता चल रही है, जिस में विवेक और विमर्श की कोई संभावना नहीं बनती. विवेक बुद्धि ने धार्मिक आस्थाओं का भी परिमार्जन किया है और उसकी आंच पर पग कर उसने आध्यात्मिकता का स्वरूप ले लिया है. बुद्ध, कबीर से लेकर इस ज़माने तक के अनेक आध्यात्मिक संतों ने धर्म को अंधविश्वासों से मुक्त कर मानवीय और लौकिक बनाने का वंदनीय प्रयास किया है. लेकिन यह हक़ीक़त है कि हमारे देश में हाल के दिनों में पाखण्ड और मिथ्याचार का जोर बढ़ा है. कभी इसी भारतीय समाज में जवाहरलाल नेहरू ने साइंटिफिक टेम्पर की वकालत की थी. आज उस परिवार से जुड़े राहुल गाँधी भी जनेऊ चमकाने की कवायद में शामिल होते हैं. कोई यह समझता है कि विकलांग श्रद्धा का दौर केवल बजरंगियों में होता है तो वह गलती पर हैं. समाजवादियों में भी यह व्याधि व्याप गई है. आम्बेडकर से लेकर कांशीराम,लालू, मुलायम सब के भक्तों की एक अंध–किरतनिया मन्डली है,जो दूसरों के अवगुण तो देखते हैं, अपने नहीं देखते. हाँ, इस मामले में बजरंगियों का पलड़ा बहुत भारी होता है. उन्होंने ताकत मिलते ही मुल्क के

इतिहास, दर्शन-परंपरा और संस्कृति को उलट-पुलट कर रख दिया है. वे मिथक को इतिहास और इतिहास का परिहास करने पर तुले हैं. अपने हिंदुत्व का विस्तार करते-करते हम कुछ और ही बनते जा रहे हैं. ऐसे में दाभोलकर प्रणीत इन किताबों से गुजरना एक अलग अनुभव से गुजरना है.

'सोचिए तो सही' शीर्षक पुस्तक मुझे कुछ कारणों से बेहद पसंद आई. इसे लेखक ने अपने बच्चों मुक्ता और हमीद को समर्पित किया है. पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है. पहले खंड में दो लेख हैं- वैज्ञानिक दृष्टिकोण और धर्म-चिकित्सा एवं विवेकवाद . दूसरे खंड में कुल अट्ठाइस लेख संकलित हैं. लेकिन पहले खंड के दोनों लेख कुछ अधिक महत्व के हैं. इन्हें तो किशोर बच्चों के पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए.

'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' शीर्षक लेख में दाभोलकर उन स्थितियों पर प्रकाश डालते हैं,जिनके कारण उन्हें अंधविश्वासों के विरुद्ध एक आंदोलन चलाना पड़ा. एक समय इन्हीं अंधविश्वासों के विरुद्ध जोतिबा फुले ने 'सत्यशोधक' संस्था बनाई थी. उनका पूरा लेखन पुरोहिती पाखण्ड के विरुद्ध वैचारिक युद्ध की घोषणा है. इन पाखंडों-अंधविश्वासों के कारण किसान-मजदूर वर्ग पुरोहित-वर्ग द्वारा लगातार छले जा रहे हैं. दाभोलकर बताते है कि यूरोप के देशों में लम्बे समय तक तर्क और विवेक के साथ ज्ञान की वकालत वहां के प्रबुद्धजनों ने की थी. आज का यूरोप पादरियों की बदौलत नहीं, इन पादरियों के विचारों का विरोध करने वाले विद्वानों और वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित है. पादरियों ने यूरोपीय देशों में भी कम दमन नहीं किया था. कोपरनिकस ने जब कहा कि सूर्य नहीं, पृथ्वी ही सूर्य का चक्कर लगाती है, तब उसका यह विचार बाइबिल के विचार से मेल नहीं खाता था. कोपरनिकस के विचारों के समर्थन के लिए कोर्ट के आदेश से ब्रूनो को जिन्दा जला दिया गया. गैलेलियो को नाक रगड़ने के लिए मजबूर कर दिया गया और एकांतवास की सजा दी गई. वह अँधा बना दिया गया, और इसी अंधेपन में लगभग पचीस साल जीकर यातनाओं के बीच वह मरा. आज पूरी दुनिया उसके विचारों के साथ है. क्योंकि उसने सत्य का संधान किया था. यह ठीक है कि बहुत सारे लोग वहां दण्डित-प्रताड़ित किए गए, किन्तु ज्ञान की आंधी वहां आई और समाज भी बदला. यह सब इस कारण हुआ की वहां रेनेसां और प्रबोधन युग आया. फिर इसके कारण औद्योगिक क्रांति हुई. उत्पादन के तरीके बदले, समाज गतिशील हुआ और लोकतंत्र की चादर पूरे यूरोप पर बिछ गई. रजवाड़ी-सामंती समाज हमेशा के लिए समाप्त हो गया.

हमारे देश-समाज में भी यूरोप की तरह ही रजवाड़ी-सामंती प्रवृत्तियों को पुरोहितवाद बल देता है. उसकी कोशिश होती है कि जनता के दिमाग में ज्ञान-विज्ञान की रौशनी प्रवेश न करे. आप कह सकते हैं पूरे एशियाई समाज को इस्लाम, बौद्ध और हिन्दू मत ने आच्छादित किया हुआ है. इन धर्मों में पुरोहितवाद और अन्धविश्वास के विरुद्ध अपेक्षित आंदोलन नहीं हुआ. इसका नतीजा हुआ इन देशों में ज्ञान-विज्ञान का अपेक्षित विकास नहीं हुआ. इस कारण समाज में वैज्ञानिक-परिदृष्टि भी विकसित नहीं हुई. बौद्ध अपनी वैचारिकता में एक विवेकवान धर्म-विचार है,लेकिन बौद्धों के बीच भी लामावाद के रूप में पाखण्ड बहुत है. जापान में झेन मत प्रभावी है. इसलिए अपेक्षाकृत वहां पाखण्ड कम है. इस्लाम की वैचारिकता समतावादी तो है, लेकिन विवेक के लिए वहां जगह बहुत कम रह जाती है. इसलिए इस्लाम बहुल देशों में सामाजिक पिछड़ापन कुछ ज्यादा ही है. विवेकहीन समत्व का कोई अर्थ नहीं होता. क्योंकि समतावादी आचरण तो सबसे अधिक चोर-डाकुओं में होते हैं. लूट के धन चोरों में बराबरी के आदर्श पर बँटते हैं . भारतीय समाज में धर्म का वह रूप नहीं था,जो इसाई और इस्लाम धर्म में था. यहाँ सनातन धर्म से जैन, बौद्ध, लोकायत और सिक्ख विचारों का विकास हुआ. और इन धर्मों ने मूल सनातनी विचारों को भी बहुत कुछ बदल दिया. सनातन अपने मूल में वैष्णव या भागवत धर्म हो गया, जिसकी विनम्रता का कोई सानी नहीं रहा. लेकिन पुरोहितवाद अपने ब्राह्मणवादी-मनुवादी स्थापनाओं को होशियारी से थोपने की जुगत में रहता है. मध्यकाल में इस्लाम और हिन्दू धर्म एक दूसरे के निकट आए. इस्लाम ने हिन्दुओं से जाति-वर्ण का सामाजिक विभाजन स्वीकारा और हिन्दुओं ने खलीफा का आदर्श. यह अकारण नहीं था कि वेदांत की अवधारणा, जिसमें निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा है, को दरकिनार कर मूर्त अवधारणा

पृष्ठ 16 पर शेष

ये प्राचीन मान्यताएं

बीसवीं शताब्दी में भी हम कब तक आंख मूंद कर, इन बेतुकी मान्यताओं को अपना कर कूपमंडूक बने रहेंगे?

अभी मैं रसोई से पसीना पोंछती हुई बाहर आई ही थी कि सामने मधु को देख कर चौंक गई। उस का चेहरा बता रहा था कि आज फिर सासबहू में कुछ कहासुनी हुई है।

मैंने हंसते हुए पूछ ही लिया, ''मधु, आज कौन सा कांड हुआ?''

वह झल्ला कर बोली, ''मेरी नाक में दम है और तुझे हंसी सूझ रही है। क्या बताऊं, आज वीना के यहां चली गई थी। उस की जो भाभी आस्ट्रेलिया में थीं न, उन की मृत्यु हो गई है। सोचा, वीना से मातमपुर्सी कर आऊं। लौटते समय घर का खाने-पीने का सामान लिया। थकी हुई थी, इसलिए आते ही लेट गई। बस, फिर क्या था। सासजी ने बरसना शुरू कर दिया-क्या जमाना है-मातमपुर्सी के घर से आ कर अशुद्ध कर दिया। सारे बिस्तर अशुद्ध हो गए। खाने का सामान फेंकना पड़ेगा। पढ़ लिख गई पर अकल न आई।

''अभी वह शायद और बोलतीं कि मैं ने कह दिया-मां जी, उस की भाभी दस साल से आस्ट्रेलिया में थीं, वहीं गुजरीं, वह भी एक महीना पहले, फिर चला यहां छूत कैसे आ गई? बस, फिर क्या था, सास जी बन गई, चंडिका। मैं तो परेशान हो कर चली आई।''

मधु ही क्या, ऐसी घटनाएं हर रोज़ हमारे घरों में होती हैं, हमारे बुजुर्गों ने समाज में व्यवहार के तमाम नियमप्रतिबंध बनाए थे, किंतु धीरे-धीरे हमारे समाज में उन के रूप को इतना अधिक विकृत कर दिया गया कि उन का सार्थक रूप तो न जाने कहां विलीन हो गया। रह गई केवल लकीर, जिसे हम बिना सोचे समझे आज भी पीट रहे हैं।

छूत की ही बात लें तो न जाने कितनी बातें सामने आती हैं। आज भी मेरी एक मित्र के घर में स्कूल से आने पर (या बाहर से आने पर) बिना नहाए घर के भीतरी हिस्से में जाने और किसी भी चीज को छूने की इजाजत नहीं है। मैंने स्वयं भी ऐसी बातें देखी हैं।

मेरे दूसरे जापे के समय काम की सुविधा के लिए मेरे पति की दूर की रिश्ते की ताई बुला ली गई थीं। मेरी छोटी ननद दिन भर अस्पताल में मेरे पास रह कर रात आठ नौ बजे जब घर पहुंचती थी तो उसे ताई जी खुले सहन में नल के नीचे नंगा बैठा कर नल खोल देती थीं। दिसंबर की सर्दी, बेचारी लड़की आखिर रोज-रोज न सह सकी और बीमार पड़ गई।

इसी समय एक घटना और हुई। मैं अपनी नवजात कन्या के साथ घर आ चुकी थी। मेरे पति तीन वर्षीय बेटे को नहला धुला कर आफिस चले गए थे। वह आंगन में खेल रहा था। मेरी उन तइया सास को शक हुआ कि शायद कोने में रखी झाड़ू से वह छू गया है।

बस, फिर क्या था। बच्चे के बार-बार कहने पर कि ''दादी जी, मैं ने झाड़ू नहीं छुई'', वह न मानीं और उसे वहीं खुले में ठंडे जल के नीचे खड़ा कर दिया। बच्चा जरा देर पहले बंद गुसलखाने में गरम पानी से नहा चुका था। उस को जो निमोनिया हुआ यह तो हुआ पर उस के बाल मन पर अपनी उन दादी के लिए बैठी घृणा की छाप को मिटाने में मुझे कितना समय लगा, मैं ही जानती हूं।

मासिक धर्म की छूत

यही क्यों, मासिक धर्म की छूत तो हास्यास्पद स्थिति पैदा कर देती है। जब पड़ोसिन छत पर से ही आवाज दे कर कहती है, ''बहन जी, आज जरा हमारे परांठे सेंक देना'', तो सारे महल्ले के मर्द जान जाते हैं कि पड़ोसिन को क्या हुआ है, शायद यह छूत की व्यवस्था इस स्थिति की कमजोरी में स्त्रियों को आराम देने के लिए की थी अन्यथा बहू को अच्छी तरह से काम करना होता था। यही समय केवल आराम के लिए मिलता था।

किंतु दूरदराज गांवों में तो स्थिति यह है कि रजस्वला स्त्री को अस्पृश्य मान लिया जाता है, जिस से यह ध्वनित नहीं होता कि उसे आराम देने के लिए ही रसोई या दूसरे कामों से दूर रखा जा रहा है। फलतः अस्पृश्यता की भावना से वह इन दिनों अपने अंदर एक प्रकार की हीनता का अनुभव करने लगती है।

मुझे याद है मेरे दिवंगत दादाजी स्वयं ही अपनी निरर्थक छूत का एक मजेदार किस्सा सुनाया करते थे। वह वेतन के नोटों को शुद्ध जल से धो कर, सुखा कर प्रयोग करते थे। एक दिन टाट पर से सौ का नोट चूहा घसीट ले

गया, जिसका बुरादा बना थोड़ा सा अंश उस के बिल से बाहर मिला।

वास्तव में छूत के साथ स्वच्छता का भाव जुड़ा है। जब बड़ी बूढ़ियां रसोई की धोती की छूत मानती हैं तो उस का वास्तविक तात्पर्य सफाई ही होता है लेकिन होता यह है कि उन की यह तथाकथित रसोई की धोती बार-बार पानी में से निकल कर कभी साबुन के दर्शन न करने के कारण इतनी गंदी और बदबूदार हो जाती है कि स्वच्छता और स्वास्थ्य उस के सामने टिक नहीं पाते।

डर का शिकार

हमारी मौसी की लड़की इसी चक्कर में ऐसे डर का शिकार हुई कि उस को चिकित्सा केंद्र तक ले जाना पड़ा। कारण यह था कि जब वह केवल कुछ माह की थी तो घुटनों के बल चलती थी। तभी से मौसी छूत के कारण रसोई से उसे दूर रखने को चूल्हे की जलती लकड़ी से उसे डरा देती थीं। यही डर उस के मन पर बैठ गया था।

हमारे एक मित्र के पिता जी इस जमाने में भी अपने इन्हीं अंधविश्वासों के कारण एक मुसीबत खड़ी कर बैठे। आफिस के घड़े का पानी न पी कर छूतछात के कारण नल पर चुल्लू से पानी पीते हैं। गरमी के दिन थे। हथेली पर बर्फ का टुकड़ा रख चुल्लू से जो पानी पिया तो फिसल कर बर्फ गले में अटक गई और लेने के देने पड़ गए।

इन्हीं रूढ़ियों में दूसरा नंबर है सिर धोने का वहम। बृहस्पतिवार को सिर धोने से धन घटता है। शनिवार को सिर धोने से पति की आयु कम होती है। सोम, मंगल को अशुकन होता है। एकादशी, अमावस्या पर सिर धोने से जितने बाल गिरते हैं उतने बालों का नाश होता है, वगैरा-वगैरा।

अब सोचा जाए तो सिर धोना भी कितनी बड़ी समस्या है और वह भी गरमी के मौसम में बड़ी बूढ़ियां सिर नहीं धोने देंगी, भले ही मैल के कारण चर्म रोग क्यों न हो जाए। इस का दूसरा पहलू भी इतना ही हास्यास्पद है। आप को जुकाम है या आप अभी बीमारी से उठी हैं, आप कहीं अस्पताल से किसी को देख कर लौटी हैं या कहीं मातमपुर्सी से आई हैं तो आप बिना सिर धोए कुछ छू नहीं सकतीं।

विधवा जेठानी का सिर धोना

सिर धोने की बात चली तो एक किस्सा याद आ गया। मैं एक दिन अपने नए पड़ोसियों से मिलने गई तो देखा देवरानी विधवा जेठानी पर बहस रही थी। पता चला कि विधवा जेठानी ने सधवा देवरानी से बिना पूछे सिर धो लिया था। देवरानी ने हमारे पड़ोस में बनवाए नए मकान का दस दिन पूर्व गृह प्रवेश किया था और तब से पूजा के सामान का गठजोड़ा बिना खोले अपने कमरे में डाल रखा था।

उसका विचार था बिना गठजोड़ा खोले नए घर में सिर धो कर विधवा जेठानी ने अपनी देवरानी को भी विधवा बनाना चाहा था। यह सब ऐसी बे सिर पैर की बातें हैं, जिन्हें हम ने जबरदस्ती गले से लगा रखा है। यही छोटी-छोटी बातें निरर्थक बन कर गृहस्थी की सुखशांति को नष्ट कतरती हैं।

ऐसी ही और बहुत सारी अंधविश्वास की बातें हैं, जिन्हें हमारे घरों में दृढ़ मान्यता प्राप्त है। मजा यह कि भूल से बड़ी बूढ़ियों से पूछ बैठिए कि ऐसा क्यों करते हैं तो बस, भाषण शुरू-''ये आजकल की बहुएं हैं। पढ़ लिख तो गईं पर तमीज़ न आई। भला कहीं ऐसी धरमकरम की बातों में 'क्या और क्यों' करते हैं? हमारे जमाने में मजाल है जो अपनी सास से हम सवाल तो कर लेते...''

उस पर तुर्रा यह कि यदि उन का बेटा उलटासीधा करे तब तो क्षम्य। मानो मर्दों को हर काम की छूट है। जो कुछ भी शकुन और अपशकुन हैं वे औरत के लिए ही हैं।

ऐसी बातें कभी-कभी भयानक दुर्घटना का कारण भी बन जाती हैं। अखबार में कुछ समय पूर्व का पढ़ा-लिखा वह किस्सा भुला नहीं सकती, जिस में नाव पर यात्रा करते एक अभोध बालक को केवल इसलिए नदी में डुबो दिया गया था क्योंकि वह अपने मामा के साथ यात्रा कर रहा था और नाव को खतरा था। कहते हैं नाव में मामा भानजा एक साथ सफर करें तो नाव डूब जाती है।

ऐसी ही एक दूसरी घटना मेरी आंखों के सामने घटी। मैं कालज के होस्टल में रहती थी। बरसात के दिन थे। शाम का झुटपुटा। मैं बगीचे में टहल रही थी कि अचानक सांप दिखाई दिया। मैं ने तुरंत पास से गुजरते हुए चौकीदार को आगाह किया। किंतु यह कह कर ''बिटिया, सांप देवता हैं, उन्हें मारना नहीं चाहिए,'' चला गया।

मेरे देखते देखते सांप चौकीदार के क्वार्टर के पीछे अंधकार में विलीन हो गया। मैं घूम कर कमरे में वापस आई ही थी कि चौकीदार की कोठरी से उठते हुए शोर ने मुझे चौंका दिया। यहां जाने पर पता चला कि उन सर्प देवता ने चौकीदार की छ: वर्षीया अबोध कन्या को डस लिया था और अब चौकीदार अपने देवता को कोस कोस कर रो रहा

था। काश! उस ने रूढ़ि के चक्कर में न पड़ कर मेरी बात मान ली होती।

जीवन संकट में

'हमारे घर में यही होता है' के साथ चिपकी सड़ी-गली मान्यता ने मेरी एक सहेली का तो जीवन ही लगभग नष्ट कर दिया था। उन के यहां बच्चों के न जीने के कारण यह परंपरा कायम कर दी गई थी कि बच्चे को चालीस दिन तक बिना कपड़ों के केवल कथरी में लपेट कर रखते थे। ऐसे ही मेरी सहेली के पति जीवित रह सके थे। उस की सास का यही कहना था।

जब मेरी सहेली के बच्चा हुआ तो उस के लाख सिर पटकने पर भी उस की बात न मानी गई और बच्चे का जन्म पर ही दाई से करवाया गया तथा कड़कती सर्दी के मौसम में भी उसे कपड़े नहीं पहनाए गए। बड़ी मुश्किल से बच्चे की जान बच सकी। सास तो सास मुझे उस के पढ़े लिखे पति पर भी क्रोध आया तो ऐसी अनर्गल घात को पान बैठे थे।

इन के अतिरिक्त ऐसी अनेक ऊटपटांग बातें धार्मिकता की आड़ में जमी हैं जिन्हें उखाड़ पाना आसान नहीं और जो बेहद तमाशे वाली भी होती हैं। मेरी ममिया सास हमारे यहां आई हुई थीं। मैंने उन्हें नाश्ते में आगरे का पेठा दिया। वह बोलीं, ''मैं पेठा नहीं खाती।''

पेठा खाना बेटा खाना

मैंने सोचा नापसंद होगा। मैं उठा कर खाने ही चली थी कि आंखें फाड़ कर बोली, ''तू पेठा खाएगी ? अरी भागवान, पेठा खाना अपना बेटा खाना होता है। बेटे की मां पेठा कभी नहीं खाती।''

उन के इस अजीब अंधविश्वास को सुन कर मेरी तो हंसी छूट गई।

ऐसे ही अंधविश्वास का एक नमूना और देखने को मिला। हम लोग हरिद्वार में भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड की बस्ती में रहते थे, जहां लगभग सभी शिक्षित लोग थे। मैंने किचन गार्डन में केले के पेड़ भी लगा रखे थे।

अगले दिन जब अपना बचा सामान लेने गई तो देखा सारे केले उखाड़ कर बाहर फेंक दिए गए हैं। पता चला उस में आने वाली देवी जी की मान्यता है कि केला अकेला कर देता है। इसलिए गृहस्थ को नहीं लगाना चाहिए।

उसी बस्ती में पढ़े-लिखों के बीच की एक घटना तो बताना बहुत ही आवश्यक है। हमारे पड़ोस में इंजीनियर के यहां एक स्वामीजी आए। भला हरिद्वार की पुण्यस्थली में अंधभक्त स्त्रियों की धर्मभीरुता का वे लाभ क्यों न उठाते ? सब जगह कहलाया गया कि बड़े पहुंचे हुए महात्मा हैं। हाथ लगाते ही असाध्य से असाध्य रोग दूर कर देते हैं।

उस समय मैं स्थानीय डिगरी कालिज में प्रवक्ता थी। अतः मुझे उन के पास सारे दिन बैठने का अवकाश न था। मेरी पूज्या सासजी पूरी श्रद्धा और नियम से जाती थीं और लगभग प्रतिदिन मुझ से उन की प्रशंसा करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से यह अफसोस भी व्यक्त करती थीं कि उन की पढ़ी-लिखी बहू तो बिलकुल नास्तिक है।

सुबह कालिज जाते समय लान में टहलते स्वामीजी के चेहरे से टपकती लंपटता मुझे विरक्त करती थी। हैरानगी तब होती थी जब मैं बस्ती के एक से एक पढ़े-लिखे समझदार आदमी को वहां जाते देखती, स्वयं मेरी सास प्रतिदिन उन के लिए तरह-तरह के व्यंजन बना कर ले जाती थी। कहानी तो लंबी है। सारांश में घटना का अंत जूतों से स्वामीजी की पिटाई के साथ हुआ।

हमारी जेठानी के मायके में परंपरा है कि अहोई अष्टमी की पूजा में भोग लगाने वाली मिठाई भीख के पैसे से आती है। पुराने जमाने में जब एक या दो आने में पूरी मिठाई आ जाती थी तब तो चल जाता था पर आज तो एक किलो मिठाई के लिए 100-100 रुपए चाहिए। अतएव अब उन के यहां भीख में केवल 10-10 पैसे मांग कर घर के रुपयों में डाल कर मिठाई आ जाती है।

मैंने एक दिन पूछ लिया कि आखिर ये कुछ पैसे 100-150 रुपयों की मिठाई में क्या परिवर्तन कर देते है तो जेठानी की मां बोली, ''बेटी, हम ने भी अपनी सास से पूछा था तो उन्होंने कहा कि उन्हें नहीं मालूम। उन की सास ऐसा करती थीं।'' सास दर सास चली आ रही यह परंपरा बनी थी, कोई नहीं जानता, पर लोग अब भी उसे पाले हुए हैं।

विधवाओं के पुनर्विवाह पर, उन की दयनीय सामाजिक स्थिति में सुधार पर नेताओं के भाषण और लेखकों के बड़े-बड़े लेख अकसर सुनने पढ़ने को मिलते हैं। किंतु क्या आज भी इस तत्संबंधी परंपरागत मान्यताओं से अपने को मुक्त कर सके हैं?

मुझे याद है जब मेरी विधवा बुआ अपने नवविवाहित इकलौते बेटे और उस की नववधू के आगमन पर गदगद हो

शेष पृष्ठ 22 पर

बच्चों के लिए अर्थशास्त्र

– रंगनायकम्मा

वस्तु का 'उपयोग-मूल्य' : श्याम ने अपना बनाया हुआ घड़ा सोमदास को दे दिया है और सोमदास की बनायी जूतों की जोड़ी ले ली है। यही हुआ है न? इस तरह की लेन-देन को 'वस्तु विनिमय' कहते हैं। उन दिनों जब 'पैसे' अभी नहीं थे सारे विनिमय वस्तु-विनिमय के रूप में होते थे। इसमें एक चीज़ का दूसरी चीज़ के साथ आदान-प्रदान होता था।

यहाँ सवाल उठता है कि जब पैसे आ गये, तो ये आदान-प्रदान किस तरह होने लगे?

बाद के पाठों में हम इस सवाल को देखेंगे। अभी हम इस बात की थोड़े में ही चर्चा करेंगे। जब पैसे आ जाते हैं, तो एक वस्तु के बदले कोई और वस्तु देना नहीं हो पाता है। अब पैसे ही देने पड़ते हैं। अपनी बनी वस्तुओं को उन लोगों को देकर, जिन्हें इनकी जरूरत हो, बदले में पैसे लेने पड़ जाते हैं। उन्हीं पैसों को दूसरों को देकर उनकी बनायी चीज़ें लेनी होती हैं। पैसों के माध्यम से होने वाले ये लेन-देन भी विनिमय ही होते हैं। यह पैसों और वस्तुओं के बाद दरअसल यही होने लगा। लेकिन सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि पैसा होता क्या है? अभी हमें यह मालूम नहीं है। जब हम अपनी कोई वस्तु देते हैं, तो बदले में पैसे क्यों मिल जाते हैं? जब हम पैसे देते हैं, तो हमें कोई वस्तु क्यों मिल जाती है? इन सभी सवालों को हम बाद के पाठों में देखेंगे। फिलहाल हम 'वस्तु-विनिमय' की मंजिल तक ही पहुंचे हैं, जहाँ अभी पैसे नहीं आये हैं।

कोई घड़ा देना और बदले में जूतों की जोड़ी लेना वस्तु-विनिमय है। मुट्ठीभर चावल देना और बदले में धनिया पत्ते की एक गाँठ लेना वस्तु-विनिमय है। एक धोबी और एक डॉक्टर का एक-दूसरे के लिए काम करना भी वस्तु-विनिमय है। बहुत पुराने ज़माने में इसी प्रकार गाँव के सारे लोगों के बीच वस्तु-विनिमय होता था और इस तरह जरूरतें पूरी हो जाती थीं।

वस्तुओं में कुछ छोटी होती हैं तो कुछ बड़ी, कुछ बहुत बड़ी तो कुछ बहुत छोटी। कुछ वस्तुएँ कम मेहनत से बनती हैं, तो कुछ बहुत ज्यादा मेहनत से। कुछ वस्तुएँ तेजी से बनती हैं तो कुछ काफी देर बाद। अगर हम बहुत छोटी वस्तु दे दें, तो कोई ज्यादा बड़ी वस्तु नहीं मिल पाती। अगर हम कम मेहनत से बनी वस्तु दें तो ज्यादा मेहनत से बनी वस्तु नहीं मिल पाती। विनिमय हो पाने के लिए शर्त यह होती है कि दोनों वस्तुओं का 'मूल्य' बराबर-बराबर हो। अब तक हम ऐसी ही बातों की चर्चा कर रहे थे जिनको समझना आसान था। इसके बाद अब हमें समझने में जरा-जरा सी कठिनाई होने लगेगी। कठिनाई कोई बहुत ज्यादा तो नहीं होगी। पर अब जरा सोचते-समझते हुए ध्यान से पढ़ने की जरूरत होगी।

शुरू-शुरू में विनिमय दैनदिन जरूरतों के लिए होते थे। कुम्हार और जूते बनाने वाले को एक-दूसरे की वस्तुओं की जरूरत थी, इसीलिए उन्होंने अपनी-अपनी वस्तुओं का आदान-प्रदान करके इस्तेमाल कर लिया।

उन दिनों इस बात से कोई मतलब नहीं होता था कि कौन सी वस्तु बड़ी है और कौन सी छोटी। आवश्यकता छोटी वस्तु की हो, तो भी अपनी कोई बड़ी वस्तु देने में कोई हिचक नहीं होती थी।

ऐसी हिचक अब धीरे-धीरे शुरू हो गयी। किसी वस्तु को बनाने के लिए मेहनत कम लगेगी या ज्यादा ? ज्यादा मेहनत किस काम में लगेगी ? घड़ा बनाने के काम में या जूतों की जोड़ी बनाने के? ज्यादा मेहनत कुर्सी बनाने में लगेगी या कम्बल बनाने में ? ऐसे विचारों की शुरूआत हो गयी। कौन-सी वस्तु बनाना मुश्किल है और कौन-सी आसान ? तजुर्बा बढ़ने के साथ-साथ यह सब धीरे-धीरे स्पष्ट होता गया। जब से यह स्पष्ट हुआ तभी से विनिमय की पूर्वशर्त के तौर पर स्थितियाँ भी तैयार थीं।

अब हमें चन्द बातों पर ज्यादा ध्यान से गौर करना होगा। प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते हैं। (1) उपयोगिता का पहलू। (2) विनिमय का पहलू।

पहले पहलू के बारे में

घड़े की क्या 'उपयोगिता' या 'उपयोग' है? यह पानी

भर कर रखने के काम आता है। भर कर रखना घड़े का स्वाभाविक गुण है। यह गुण घड़े के शरीर के अन्दर मौजूद है। घड़े के इस गुण को हम घड़े का उपयोग-मूल्य कहेंगे।

जूतों की जोड़ी का क्या 'उपयोग' है ? जूते चलते समय कंकड़-पत्थरों और काँटों से हमारे पाँवों की रक्षा करते हैं। यह जूतों का स्वाभाविक गुण है। यह जूतों के शरीर के अन्दर मौजूद गुण है। इसे हम जूतों का 'उपयोग-मूल्य' कहेंगे।

घड़े और जूतों की जोड़ी में कौन सी चीज बड़ी है? किसका उपयोग-मूल्य ज्यादा है? इस तरह 'उपयोग-मूल्यों' की कोई तुलना नहीं की जाती। जब हमें घड़े की जरूरत हो, तो उसके न होने पर क्या जूतों की जोड़ी घड़े की जरूरत पूरी कर सकती है? उसी प्रकार जब जूते की जोड़ी की जरूरत हो, तो उसके न होने की स्थिति में यदि घड़ा उपलब्ध हो तो क्या जूतों की जरूरत पूरी हो सकती है? अगर कुर्सी उपलब्ध हो, जबकि हमें छोटी-सी पेंसिल की जरूरत हो, तो क्या इससे हमारी जरूरत पूरी हो सकती है? खास-खास जरूरत के लिए खास-खास वस्तु ही जरूरी होती है। खाने के लिए - भात जरूरी है। रहने के लिए - मकान जरूरी है। ओढ़ने के लिए - कम्बल जरूरी है। पढ़ने के लिए - किताब जरूरी है। इसी तरह हर वस्तु का अपना अलग-अलग उपयोग-मूल य होता है। इसी कारण से उपयोग-मूल्यों की ऐसी कोई तुलना नहीं की जा सकती कि कौन-सा उपयोग-मूल्य बेहतर है और कौन-सा कमतर। ऐसी तुलना करना सोचने का गलत तरीका होगा। अलग-अलग जरूरत की पूर्ति करने वाली अलग-अलग चीजों में न कोई बेहतर होती है, न कोई कमतर। यह है वस्तुओं के बारे में जानने की पहली चीज।

दूसरा पहलू :

यह वस्तुओं की वह विशेषता है जिसके कारण उसका विनिमय हो पाता है। अब से हमारे सामने जरा-सी समस्याएँ पेश आयेंगी।

सवाल और जवाब

1. किसी को हम अनाज दें और अमरूद लें, तो इसे क्या कहते हैं?

जवाब : वस्तु-विनिमय।

2. 'उपयोग-मूल्य' क्या है ? उदाहरण सहित बताएँ।

जवाब : किसी चीज की उपयोगिता ही उसका उपयोग-मूल्य होता है। भात का उपयोग-मूल्य यह है कि वह खाने के लिए उपयोगी है। कपड़े पहनने के लिए उपयोगी हैं। इसी तरह और चीजें भी।

3. किसका उपयोग-मूल्य ज्यादा है? खाट का या कुर्सी का?

जवाब : उपयोग-मूल्यों में कोई ज्यादा या कम नहीं होता। खाट किसी एक जरूरत की पूर्ति करती है, तो कुर्सी किसी और जरूरत की। किसी भी खास जरूरत की पूर्ति के लिए कोई खास वस्तु ही जरूरी होती है।

4. क्या हर वस्तु का कोई न कोई उपयोग-मूल्य होता ही है?

जवाब : जरूर होता है। जब कोई वस्तु बिगड़ जाती है, तो तब से उसका कोई उपयोग नहीं रह जाता।

5. पानी का उपयोग-मूल्य और दूध का उपयोग-मूल्य - दोनों में कौन सा ज्यादा है?

जवाब : हम उपयोग-मूल्यों की तुलना नहीं कर सकते। हर वस्तु का अपना-अपना उपयोग होता है। दूध का उपयोग पानी के लिए उपयोग से न तो ज्यादा है और न ही कम। पानी के उपयोग की बात करें, तो यही बात होगी। उपयोग-मूल्यों में बड़ा या छोटा कुछ नहीं होता।

6. एक किलो चावल और दो किलो चावल। कौन सा ज्यादा उपयोगी है ?

जवाब : दोनों चावल ही हैं, इसलिए हम तुलना कर सकते हैं। कम चावल से ज्यादा चावल ज्यादा उपयोगी है।

7. तम्बाकू, शराब, बन्दूक और जहर। क्या इनका भी कोई उपयोग-मूल्य है?

जवाब : हाँ, होता है। तम्बाकू क्यों उपयोगी है, यह हमें देखना होगा और उस पहलू को चिह्नित करना होगा। यहाँ बहस यह नहीं है कि यह उपयोग अच्छा है या बुरा। जब हम 'उपयोग-मूल्य' की बात करते हों, तो हमारा मतलब यह नहीं होता कि उपयोग अच्छा ही होगा। इससे सिर्फ यह पता चलता है कि वह वस्तु किस तरह की है। शराब की प्रकृति वही होगी जो शराब की होती हो। बन्दूक की प्रकृति वही होगी जो बन्दूक की। जहर की प्रकृति वही जो जहर की।

वस्तु का 'विनिमय-मूल्य'

घड़े का 'उपयोग' क्या है? वह पानी भर रखने के काम आता है। घड़ा कैसे बनाया जाता है? चिकनी मिट्टी से

एक खास तरीके से। चाहे घड़ा हो, चाहे जूतों की जोड़ी या कोई और वस्तु, अपनी आँखों से देखने पर उपयोगिता साफ जाहिर होती है। वह वस्तु किस तरह के श्रम से बनी होगी, यह भी साफ जाहिर हो जाता है। मतलब यह कि उपयोग-मूल्य को समझ पाने के लिए हमारी 'सामान्य बुद्धि' काफी हो जाती है। इसे समझ पाना आसान है। इसमें कोई कठिनाई नहीं होती।

मगर 'विनिमय' पर पाठ शुरू होते ही हमें कई बातों को समझने के लिए ज्यादा ध्यान देने की जरूरत पड़ती है। ये मसले ऐसे हैं जिनसे हमारा ज्ञान बढ़ना तय हो। इनको समझने के लिए हमारे अन्दर जिज्ञासा होनी चाहिए।

घड़ा और जूतों की जोड़ी दो अलग-अलग चीज़ें हैं। इनका आपस में विनिमय हो पाने के लिए इनके अन्दर ऐसा कौन सा गुण होता है जो परस्पर विनिमय की इजाजत देता हो? दोनों का कोई समान गुण होगा। यही वजह है इन चीजों के मालिकों को अपनी एक चीज देकर बदले में दूसरी चीज लेने में कोई आपत्ति नहीं होती। क्या दोनों चीज़ों का वजन समान है? क्या ऊँचाई समान है? नहीं, बात उनकी किसी शारीरिक विशेषता की नहीं है। दोनों चीज़ें एकदम अलग-अलग तरह की हैं, इसलिए शारीरिक विशेषता तो समान नहीं हो सकती। उनका विनिमय तभी हो पाता है जब दोनों की कोई न कोई विशेषता समान हो। यह विशेषता क्या हो सकती है? यह विशेषता है उस श्रम का परिमाण (मात्रा) जिससे ये चीजें बनी (उत्पादित हुई) हों। घड़ा बनाने के लिए किसी 'निश्चित मात्रा' में श्रम करना जरूरी होता है। जूतों की जोड़ी के लिए भी किसी 'निश्चित मात्रा' में श्रम करना जरूरी होता है। घड़े का श्रम और जूतों का श्रम बराबर-बराबर है। इसीलिए दोनों का आपस में विनिमय हो पाता है। अगर एक चीज को बनाने में ज्यादा श्रम लगा हो और दूसरी चीज को बनाने में कम, तो पहली चीज का मालिक इस विनिमय को स्वीकार नहीं करेगा और दोनों का आपसी विनिमय नहीं हो पायेगा।

ठीक है, फिर। हम यह कैसे जान पाते हैं कि किस वस्तु में ज्यादा श्रम लगा है और किस वस्तु में कम? श्रम नापते कैसे हैं? वजन नापने के लिए तराजू होता है। ऊँचाई नापने के लिए फुट-पट्टी या मीटर-सेण्टीमीटर का नाप होता है। फिर श्रम को नापने की क्या विधि होगी? श्रम को नापने के साधन क्या होगा? श्रम नापने की भी कोई विधि है। साधन है। वह साधन है 'समय'। यानि: इतने-इतने घण्टों का श्रम। इतने-इतने दिनों का श्रम। यही है श्रम नापने का साधन।

घड़ा बनाने के लिए कितना समय लगा है? जूतों की जोड़ी बनाने में कितना समय लगा है? अगर ज्यादा समय लगा हो, तो श्रम ज्यादा होगा। कम समय लगा हो, तो श्रम कम होगा। श्रम अगर बराबर-बराबर लगा हो, तो इन चीजों का विनिमय करने वालों में किसी का भी कोई नुकसान नहीं होगा। अगर हम कम श्रम से बनी कोई चीज दें, तो हमें ज्यादा श्रम से बनी चीज़ नहीं मिल सकती।

मान लें कि घड़ा बनाने में कुल 2 घण्टे का श्रम और जूतों की जोड़ी बनाने में 5 घण्टे का श्रम लगा हो। इन दोनों चीजों का यदि आपसी विनिमय हो जाये, तो कुम्हार के लिए यह 2 घण्टे का श्रम देने और बदले में 5 घण्टे का श्रम लेने के समान होगा। कुम्हार इसे पसन्द करता है। वह इस विनिमय से राजी-खुशी सहमत होगा। लेकिन जूते बनाने वाले के लिए क्या यह 5 घण्टे का श्रम देने और सिर्फ 2 घण्टे का ही श्रम लेने जैसा नहीं होगा? उसे यह पसन्द नहीं आता। वह इस विनिमय के लिए राजी नहीं होगा। यही वजह है कि ज्यादा श्रम से बनी चीज का कम श्रम से बनी चीज के साथ विनिमय नहीं हो पाता।

दो अलग-अलग चीजों के आपसी विनिमय में निहित वास्तविक उसूल यह है कि दी जाने वाली चीज में लगा श्रम ली जाने वाली चीज में लगे श्रम के बराबर हो। अगर दोनों चीजों में 'श्रम' का परिमाण समान हो, तो सिर्फ इस एक गुण के ही बदौलत दोनों का परस्पर विनिमय हो सकता है। दो अलग-अलग चीजों में लगने वाला श्रम का समान होता ही इन दो चीजों का समान गुण है। विनिमय हो पाने के लिए जो विशेषता पूर्वशर्त है उसका नाम है-'विनिमय मूल्य'।

मान लें कि घड़ा बनाने के लिए 2 घण्टे का श्रम लगा हो। यह इस घड़े का विनिमय मूल्य होगा। मान लें कि जूतों की जोड़ी बनाने के लिए भी 2 घण्टे का ही श्रम लगा हो। यह इसका विनिमय मूल्य होगा। ऐसी स्थिति में तात्पर्य यह होगा कि जूतों की जोड़ी में उतना ही विनिमय मूल्य होगा जितना कि घड़े में। अगर हम घड़ा दें और बदले में जूतों की जोड़ी लें, तो इसका मतलब यह होगा कि हमें उतना ही श्रम मिला है जितना दिया हो। कुम्हार अपना 2 घण्टे का

श्रम दे देता है और 2 घण्टे का श्रम वापस ले लेता है। इसी तरह जूते बनाने वाला भी उतना ही श्रम वापस लेता है जितना देता हो। घड़े और जूतों के बीच इस विनिमय के कारण दोनों में से किसी का भी कोई नुकसान नहीं होता। लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं कि किसी का कोई फायदा होता हो। दिया जाने वाला मूल्य और वापस लिया जाने वाला मूल्य बराबर-बराबर हैं।

घड़ा और जूते बराबर-बराबर हैं। किस मायने में बराबर-बराबर? 'उपयोग-मूल्य' के मायने में नहीं, बल्कि 'विनिमय मूल्य' के मायने में। यानि इन चीजों को बनाने के लिए जरूरी श्रम की मात्रा के मायने में।

इस विनिमय के कारण कुम्हार को जूतों की जोड़ी मिल पाती है। और जूते बनाने वाले को घड़ा मिल पाता है। यह दोनों में से किसी को कोई फायदा या नुकसान पहुँचाये बिना हो जाता है। दोनों को उतना ही मूल्य वापस मिलता है जितना एक-दूसरे को दिया हो। इस विनिमय का फल यह होता है कि दोनों पक्षों की जरूरतें पूरी हो जाती हैं।

('विनिमय-मूल्य' को हम संक्षेप में और सरल तरीके से 'मूल्य' कह सकते हैं। जब हम 'मूल्य' की बात करें, तो इसे 'उपयोग-मूल्य' समझने की भूल नहीं करनी होगी। 'मूल्य' का अर्थ 'विनिमय-मूल्य' के अलावा कुछ नहीं होगा।)

सोचा जाये, तो उस जमाने में जब विनिमय की शुरुआत हो रही थी, तब क्या लोगों को 'श्रम' के विषय में जानकारी थी? उस जमाने के लोग क्या यह जानते थे कि घड़ा बनाने के लिए कम श्रम लगता होगा और कुर्सी के लिए ज्यादा श्रम लगता होगा? वे इतना नहीं जानते थे। शुरू-शुरू में 'श्रम' के विषय में किसी को जानकारी नहीं थी। जिस किसी को दूसरों से कोई वस्तु लेने की जरूरत होती उसके लिए वह अपनी कोई वस्तु देने की बात करता। दूसरा व्यक्ति भी अपनी जरूरत की चीज के लिए अपनी वस्तु देने की बात करता। उस शुरुआती जमाने में 'समान विशेषता' जैसी कोई चीज नहीं होती थी। किसी को इसका ज्ञान नहीं था।

हर किसी के तजुर्बे समय के साथ बढ़ते गये। लोगों को यह जानकारी होने लगी कि किस वस्तु के लिए ज्यादा श्रम लगता है और किसे लिए कम। फिर भी ये मामले स्पष्ट हो जाने के बावजूद जोड़-घटाव सटीक नहीं हो पाता था। मान कर चलना होगा कि पुराने जमाने में विनिमय होते थे तो सटीक जोड़-घटाव के बिना ही।

सवाल और जवाब

1. 'विनिमय-मूल्य' क्या होता है?

जवाब : दो वस्तुओं का परस्पर विनिमय हो पाने के लिए जो मूल्य जरूरी होता हो वही विनिमय-मूल्य है। इन वस्तुओं को तैयार करने के लिए जितना श्रम जरूरी होता है, वही विनिमय-मूल्य है।

2. क्या प्रत्येक वस्तु 'श्रम' से बनी नहीं होती ? इसका क्या यह मतलब होगा कि हर वस्तु का कोई न कोई 'विनिमय-मूल्य' होता ही है?

जवाब : यह जरूरी नहीं कि वस्तु जैसे ही बने, उसका श्रम मूल्य में बदल जाता हो। वस्तु के श्रम को मूल्य में तभी गिना जाता है जब उसका किसी और वस्तु के साथ विनिमय होता हो। अगर कोई विनिमय न हो, तो मूल्य का कोई सवाल ही नहीं उठता।

3. दो अलग-अलग वस्तुओं का आपस में विनिमय होना हो, तो दोनों में कौन सी विशेषता समान होनी चाहिए?

जवाब : उनका मूल्य समान होना चाहिए। मतलब यह कि इन वस्तुओं को बनाने में लगे श्रम की मात्रा समान होनी चाहिए।

हम बोलेंगे साथी हम बोलेंगे

जब जनमत सारे झुठला दिये जाएंगे
जब फल लदे वृक्षों पर गिद्ध मंडरा जाएंगे
जब हर तरफ लठबाज़ी हावी होगी
जब हर व्यक्ति की नैतिकता चुनावी होगी
तब भी हम दीवानों की तरह डोलेंगे साथी
हम बोलेंगे साथी, हम बोलेंगे!
जब धर्म देश को सुलगाने लगेंगे
जब रंगे सियार मल्हार गाने लगेंगे
जब इंसानियत ठोकरों तले रौंदी जाएगी
जब मुन्नी सिर्फ शरीर की भूख दबा पाएगी
तब भी हम मानवता की नब्ज टटोलें साथी!

-ब्रिज किशोर

पाइथागोरस

– फिलिप केन

जैसी प्रसिद्धि पाइथागोरस के सिद्धान्त को मिली, वैसी गणित के किसी मौलिक नियम को शायद ही मिली हो। इस सिद्धान्त को सबसे पहले मिस्रवासी अमल में लाए। परन्तु उनके पास इसके सही होने का कोई प्रमाण नहीं था। इसलिए इस नियम की सत्यता को गणित के अनुसार सर्वप्रथम प्रमाणित करने का श्रेय पाइथागोरस को दिया जाता है।

पाइथागोरस का सिद्धान्त यह प्रमाणित करता है कि समकोण त्रिभुज की दोनों छोटी भुजाओं पर बनाए गए वर्गों के क्षेत्रफल का योग, उसी त्रिभुज की तीसरी भुजा के कर्ण पर बनाए गए वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर होता है। समकोण त्रिभुज का एक कोण 90^0 को होता है। यह सिद्धान्त समस्त उद्योग विद्या का आधार है।

नाप-तोल के इतिहास में महत्त्वपूर्ण वह समकोण त्रिभुज है, जिसकी एक भुजा की लम्बाई यदि 3 इंच हो और दूसरी भुजा की 4 इंच तो इस त्रिभुज को समकोण के सामने वाली तीसरी भुजा (जिसे हाईपोटेनस अथवा कर्ण कहते हैं) 5 इंच लम्बी होगी। दोनों भुजाओं पर बने छोटे-छोटे वर्गों की संख्या क्रमशः 9 और 16 है, जब कि बड़ी भुजा पर बने उस किस्म के वर्ग संख्या में 25 है। अर्थात् 3 ×3 धन 4 × 4 बराबर है 5 × 5। यह नियम किसी भी समकोण त्रिभुज के लिए सही उतरेगा। ज्यामिति में पाइथागोरस का यह सिद्धान्त इतना मनोरंजक सिद्ध हुआ कि उसकी सत्यता के प्रमाण में एक सौ से अधिक सबूत दिए जा चुके हैं। इनमें अमरीका के राष्ट्रपति गारफील्ड की एक मौलिक सिद्धि भी शामिल है।

पाइथागोरस का जन्म ग्रीस के सामोस द्वीप में ईसा से लगभग 582 साल पहले हुआ था। उसके व्यक्तिगत जीवन के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। सम्भवतः उसने भूमध्य सागर के उस पार भिन्न देश में जाकर वहां के विद्या-केन्द्रों का निरीक्षण किया था। 529 ई. पू. में अत्याचारी सम्राट पालीकैटीज ने पाइथागोरस को ग्रीस देश से निकाल दिया। तब वह इटली के दक्षिण में चला गया। वहां अपने अनुयायियों के साथ उसने एक सम्प्रदाय की नींव डाली। यह सम्प्रदाय एक ऐसा भ्रातृमण्डल था, जिसकी आस्था गणित, धर्म और दर्शन के अध्ययन में थी। इस मण्डल के सभी सदस्य धनी-मानी परिवारों के कुलीन व्यक्ति थे। उन्होंने मण्डल की कार्यवाही को गुप्त रखने की शपथ ली थी। इसका परिणाम यह हुआ था कि आम जनता इस मण्डल के सदस्यों को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। पाइथागोरस और उसके अनुयायियों का विचार था कि मनुष्यों और पशुओं में कुछ स्वाभाविक सम्बन्ध होता है। इस विश्वास के परिणामस्वरूप भ्रातृमण्डल के नियमों में कुछ कठोरता आ गई थी। आत्मसंयम, आन्तरिक पवित्रता, मिताहार और आज्ञाकारिता-ये पाइथागोरस के सम्प्रदाय के प्रतीक थे।

पाइथागोरस के शिष्यों ने ही कोपरनिकस को पहले-पहल यह संकेत दिया था कि ब्रह्माण्ड का केन्द्र सूर्य है। पाइथागोरस का विश्वास था कि ग्रह-नक्षत्रों की परिक्रमा का पथ वृत्ताकार ही होना चाहिए, क्योंकि उसके मतानुसार परिक्रमा का सर्वश्रेष्ठ पथ वृत्त के सिवाय दूसरा नहीं हो सकता। उसकी मान्यता थी कि पृथ्वी, तारे, नक्षत्र, ब्रह्माण्ड-सभी वृत्ताकार हैं, क्योंकि स्थूल वस्तुओं में वृत्त ही सबसे अधिक परिपक्व-ठोस आकार के हैं।

भ्रातृमंडल में नक्षत्रविद्या के पारखी और गणितज्ञ तो थे ही, जीवविद्याविद् और शरीरशास्त्री भी थे। इन शरीर वैज्ञानिकों ने खोज करके दृष्टि-तंत्रिका (आष्टिक नर्व्ज़) तथा 'त्रिपथगा' (यूस्टेकियन ट्यूब्ज़) का पता लगा लिया था।

पाइथागोरस के शिष्य अपने गणित-सम्बन्धी ज्ञान को संगीत में भी उतार आए। संगीत का स्वर मूलतः एक शुद्ध कर्णप्रिय ध्वनि होता है। कुछ तार-स्वर ऐसे होते हैं, जो एक साथ बजने पर मधुर लगते हैं, जबकि वे ही कुछ अन्य स्वरों के साथ वजने पर कटु लगते हैं। पाइथागोरस ने इसका कारण ढूंढ निकाला कि सितार के तारों की लम्बाई जब एक-दूसरे के साथ सरल अनुपात में होती है, तब उन्हें एक साथ छेड़ने से उठने वाली आवाज में एक प्रकार की मधुर एकरसता होती है। उदाहरण के लिए, यदि एक तार दूसरे तार से दुगना लम्बा हो और दोनों की मुटाई और तनाव एक-सा हो, तो उन्हें एकसाथ छेड़ने पर मधुर ध्वनि निस्वृत होगी।

शेष पृष्ठ 26 पर

शची के लम्बे चाचा



-दुर्गा भाभी
(07 अक्तूबर 1907-14 अक्तूबर 1999)

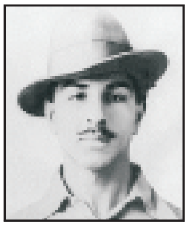
स्वतंत्रता वीरांगना दुर्गा भाभी का जन्म 07 अक्तूबर 1907 को बांके बिहारी भट्‌ट के यहां उत्तर प्रदेश के कौशांबी में हुआ था। अत्यंत साहसी स्वभाव की दुर्गा का विवाह शहीद भगवतीचरण वोहरा के साथ 1918 में हुआ था। ब्रिटिश विरोधी सशस्त्र क्रांति में अपने पति का साथ उन्होंने जीवन भर निभाया। 1925 में 'शचिन्द्र' नामक बालक को जन्म दिया। सांडर्स हत्या के बाद 1928 में आपने भगत सिंह, राजगुरु और आज़ाद को वेश बदलकर लाहौर से बाहर निकाला। भगत सिंह को कोलकाता लेकर गई। 28 मई 1930 कों भगवती चरण की बम परीक्षण में वीरगति प्राप्त होने पर, सशस्त्र क्रांति का विचार पल भर भी दिल से नहीं गया। कुछ माह बाद 9 सितंबर 1930 को दुर्गा भाभी ने बाबा पृथ्वी सिंह आज़ाद और सुखदेव राज के साथ मुम्बई के लेमिंग्टन रोड पुलिस स्टेशन के अधिकारी पर गोली चलाकर उसे मारने की कोशिश की, लेकिन असफल रहे। पुलिस ने हमलावरों को ढूँढा लेकिन कोई पकड़ा नहीं गया। दुर्गा भाभी ने स्वतंत्रता के बाद लखनऊ मांटेसरी स्कूल की स्थापना की और 14 अक्तूबर 1999 को गाजियाबाद में चिरनिद्रा में लीन हो गई।

भगत सिंह ठीक ही कहता था...

जब जेल में मुलाकात के लिए जाती थी। कहता था- क्या मुँह बना रखा है। यह उदासी किस लिए अरे, इस तरह क्यों न सोचो कि बुढ़ापे में मरेंगे तो यों-यों (सिर हिलाकर) सिर हिलता रहेगा, अभी जाएँगे तो वाह क्या ठाठ हैं....

उन दिनों उसकी बात सुनकर दिलासा मिलती थी। जेल में मिलाई के समय जब खाना देने जाती थी, तब वह इसी तरह की बातें करता था और शायद सही कहता था। आज भी सोचती हूं कि भैया (आजाद) का जो अन्त हुआ, अच्छा हुआ। जिन्दा होते तो ज्यादा निराशा होती। आज जैसा ज़माना है, वे तो आत्महत्या कर लेते, जो चला गया अच्छा हुआ। 28 मई, 1930 को जब मेरे पति भगवतीचरण रावी तट पर बम परीक्षण में शहीद हो गए तब भैया ने कहा था, ''भाभी, तुमने देश के लिए और हमारे दल के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है। तुम्हारे प्रति हम सबका जो कर्त्तव्य है, उसे कभी नहीं भूलेंगे।''

मेरा एकमात्र पुत्र शची अभी बहुत छोटा था। वह भैया आज़ाद को 'मोटे चाचा' कहा करता था। भगत सिंह को 'लम्बे चाचा' कहता था। पैसों की कमी के बावजूद मोटे चाचा सवेरे-सवेरे उसके लिए एक इकन्नी खर्च कर डालते थे। शची के लिए उस इकन्नी की जलेबी मँगा दी जाती थी। जब भैया के पास पैसे न होते तो किसी अन्य से लेकर जलेबी मँगा दिया करते। उन दिनों इकन्नी की बड़ी कीमत थी। जब पैसों की तंगी न रहती तब भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, शिव वर्मा, जयदेव कपूर आदि सभी साथियों को भी एक-एक इकन्नी सुबह नाश्ते के लिए मिल जाती थी और भाई लोग बड़ी उमंग से कभी उस एक आने में कचौड़ी खाते तो कोई चाय बनाता। पैसे न रहने पर नाश्ते का नियम नहीं चल पाता था। दोनों समय भोजन के लिए चार आने काफी समझे जाते और कभी-कभी तो दो पैसे ही हर एक को मिल पाते। उसी में दाल-चावल खाकर काम चला दिया जाता। यों यह बात मालूम हो चुकी है कि इतने कम खर्च के लिए भी दिल्ली और ग्वालियर सरीखी जगहों पर इन क्रांतिकारियों को उधार खाते से काम चलाना पड़ता था।



आज़ाद, शची को रात में अपने साथ लिटाते। कभी उसकी चिन्ता में उन्हें रात भर नींद न आती। बच्चे को छाती से चिपटाकर आज़ाद मर्म-वेदना से कहते, ''बेटे, तू हम सबके लिए अमूल्य निधि है। क्या करूँ तेरे लिए?''

जैसा कि नियम था, दल के नेता (आजाद) के समक्ष सभी सदस्य जब अपनी-अपनी पिस्तौलें जमा कर देते और उनकी सफाई आदि का काम शुरू होता तो आजाद शची के सामने पिस्तौलों को एक पंक्ति में सजा देते और कहते, ''बेटे, कौन-सी तुझे पसन्द, उठाना तो।'' आजाद अपनी पिस्तौल भी उसे खेलने के लिए दे दिया करते। ... शची,

भैया (आजाद) के लिए मन बहलाव था। जिन दिनों कानपुर में मुसद्दी लाल के यहाँ रहते थे, घर में अंधेरा गाढ़ा हो जाता तब भैया (आजाद) शची से एकाएक कहते, ''बेटे जाओ, दरवाजा बन्द कर आओ।'' ऐसा इसलिए कहते थे ताकि शची का साहस बढ़े।

....मेरे ससुर जी नहीं रहे थे। घर में बँटवारा हो गया। मुझे और उन्हें (भगवतीचरण) और अधिक आज़ादी मिल गई। हर समय घर साथियों से भरा रहने लगा। सक्रियता बढ़ गई। खद्दर की धोती पहने मैं भी खूब भाग-दौड़ करने लगी। उन दिनों खद्दरवाली धोतियों में किनारी नहीं रहती थी। मैं बीच में पट्टी जोड़कर, वही धोतियाँ हमेशा पहना करती थी। विदेशी वस्त्रों की होली जल चुकी थी। वे (भगवतीचरण) कांग्रेस में सक्रिय थे ही। उनके साथियों में भगत सिंह, धन्वन्तरि, सुखदेव और यशपाल भी थे। मैंने यशपाल के साथ ही 'प्रभाकर' की परीक्षा दी थी। सन् 1921 में कांग्रेस आन्दोलन, स्वदेशी-प्रचार, विदेशी वस्तु बहिष्कार की धूम थी। घर का वातावरण स्वदेशी आन्दोलन से आपूर्ण था किन्तु मैं अभी पुराने संस्कारों से छुटकारा नहीं पा सकी थी। एक बार उन्हें (पति) स्वदेशी आन्दोलन के सम्बन्ध में देहरादून जाना पड़ा। चन्दे के लिए 'राजा भोज' नाटक खेला गया था। मैं जब सबके साथ दाल-भात खाने बैठी, तो एक कौर गले से नहीं उतर पा रहा था। सहभोज की आदत जो नहीं थी। मुझे याद है, उस ड्रामे में यशपाल 'राजा भोज' बने थे। बलदेव ने रुक्मिणी का अभिनय किया था। वह ब्लाउज पहने था। लाडो रानी जुत्शी का ही ब्लाउज था। अचानक वह फट गया। लाडो आगे हो बैठी नाटक देख रही थी। बिन कुछ भी सोचे यह बोल उठी, ''हाय मेरा ब्लाउज।'' लोग हँसने लगे थे।

उन दिनों लाहौर में लाला लाजपत राय का नेशनल कॉलेज विख्यात था। वे (भगवतीचरण) इसी कॉलेज में आ गए। यहीं एक टोली बनी, जिसमें भगत सिंह, सुखदेव, धन्वन्तरि, यशपाल शामिल हुए और भी कई लोग थे। सन् 1928 में ये सब लोग क्रांतिकारी दल में आ गए। मैं उन दिनों लाहौर में महिला विद्यालय में हिन्दी विभाग, में प्रमुख थी। नौकरी का उद्देश्य था, पुलिस के सन्देह से बचे रहना।

पुलिस उन (पति) पर क्रांतिकारी होने का शक करती थी, इसलिए भी मेरे लिए नौकरी करना जरूरी हो गया था। बाकी समय मैं दल के लिए धन इकट्ठा करती। 'रिवोल्यूशनरी' (क्रांतिकारी) नाम का प्रसिद्ध पर्चा बाँटती, दूसरे पर्चे भी रातो-रात पेड़ों पर चस्पा कर आती। सन् 1927 में वे (भगवतीचरण) फरार हो गए। 'मेरठ षड्यन्त्र' में उनकी गिरफ्तारी के दो वारंट आए। घर की तलाशी हुई। पुलिस की निगरानी सख्त हो गई। मैं स्कूल कम जा पाती। स्कूल के मैनेजर थे हंसराज। धन्वन्तरि उनके सहयोगी थे और मित्र भी। स्कूल की एक अपनी बस थी। उसके ड्राइवर को पुलिस ने रिश्वत देकर अपना भेदिया बना लिया था। वह मेरी गतिविधियों पर निगरानी रखने लगा। छद्म वेश में दो आदमी और भी उसके साथ रहने लगे। ये भी पुलिस के ही थे। खुफिया पुलिस का एक आदमी मेरे मकान में किरायेदार बनकर भी रहने लगा।

सांडर्स वध के दिन मैं विद्यालय में ही थी। शाम के लगभग सवा चार बजे मुझे सांडर्स के मारे जाने की खबर मिली। एक्शन (सांडर्स) का निश्चित समय भी यही था। मैं स्कूल से चली। उसी सड़क से निकली, जहाँ सांडर्स की लाश पड़ी थी। भीड़ बहुत थी। तमाम पुलिस ही पुलिस। उनका घेरा पड़ा था। अतः गाड़ी ऊपर से निकालकर ले जाई गई। मुझ पर निगरानी अब और सख्त हो गई। गाड़ी चलते समय पुलिस वाले रोशनदानों से झांक-झांककर चौकसी रखते।

क्रांतिकारी साथियों का आना-जाना घर में रहता ही था। अतः मैंने संस्कृत सीखने के लिए एक अध्यापक लगा लिया ताकि पुलिस के शक से बचा जा सके। उसी रात मैं संस्कृत पढ़ रही थी कि सुखदेव आए। उस समय करीब नौ बजे का समय रहा होगा और भी कुछ लोग बैठे थे। सुखदेव का बर्ताव मुझे रोज जैसा सामान्य नहीं लगा। वे कहने लगे, ''क्या पढ़ती हो यह सब ?''

''संस्कृत पढ़ रही हूँ'', मैंने कहा।

''पढ़ना छोड़ो, यह बताओ कि क्या किसी को लेकर बाहर जा सकोगी ?'' सुखदेव ने उसी असामान्य मनःस्थिति में पूछा था।

मैं बोली, ''छुट्टियाँ होने में अभी तीन-चार दिन बाकी हैं।'' ''छुट्टी ले सकोगी ?'' सुखदेव एक पर एक प्रश्न करता गया था और मैंने उसी रात छुट्टी के लिए प्रार्थना पत्र लिखा। धन्वन्तरि को दे दिया। शची वहीं था, उसकी उम्र अब तीन साल की थी। बताया गया कि जिसको लेकर जाना है, मैं उसके साथ शची को भी ले जाऊंगी।

मैंने यह भी नहीं पूछा कि कहाँ और किसके साथ जाना है। पूछने का नियम भी नहीं था। सुखदेव को मैं एकदम तत्पर ही मिली। मेरी तत्परता देखकर सुखदेव बोले, ''भाभी, यह सोच लो कि अगर रास्ते में कुछ हो गया तो सब-के-सब (यानी शची भी: खत्म हो जाओगे।''

मैंने कहा, ''ठीक है।''

सुखदेव उस वक्त मुझसे पाँच सौ रुपए लेकर चले गए थे। ये (भगवतीचरण) जाते समय शायद इसी मंतव्य से एक हजार रुपए मेरे पास छोड़ गए थे। मुझको तैयारी के लिए चौबीस घंटे का समय मिल गया। दूसरे दिन, दिन के 10 या 11 बजे होंगे, सुखदेव आए साथ में और भी दो लोग थे। मैं खाना बनाकर बैठी थी। शची कुछ खटपट करता खेल रहा था। सुखदेव के साथ आए लम्बे व्यक्ति की ओर संकेत करके पूछा, ''भाभी पहचाना?''

मैं उसे नहीं पहचान सकी। सुखदेव ने कहा, ''पूरा जाट है।'' साथ में उनके दूसरा आदमी था देखने में एकदम नौकर जैसा उसे मैं फिर भी नहीं पहचान सकी। परिचय भी नहीं था मैं नहीं जान सकी कि यही राजगुरु है। एकदम नौकर ही लगते थे। उन्हें नौकर का ही वेश बनाना पड़ा था। सिर मुंड़ाए हुए फटी दरी साथ में। आज भी मुझे इस बात का दु:ख होता है कि पहचानने के बाद भी कि यह पार्टी का ही कोई आदमी है, उसके साथ नौकर जैसा ही सलूक किया था।

घर में गुसलखाने के बाहर जो तख्त पड़ा था, राजगुरु सबसे अलग-अलग ही अपना फटा विस्तर रखें बैठे रहे। भोजन के समय भगत सिंह ने उनसे कहा भी कि अन्दर चलकर खाना खा लो लेकिन राजगुरु हटे नहीं यहीं तख्त के पास बैठकर बाहर ही भोजन किया, ठीक नौकर की तरह।... कभी कुछ नहीं कह सका। बिल्कुल खामोश आदमी था।

भगत सिंह ने मेरे पास बैठे शची को देखा। कहने लगे, ''भाभी, मुझे फिक्र होती है कि अगर तुम्हारा बेटा मारा गया तो...''

''भैया यह वक्त बेवक्त की 'तो' कैसी? तुम भी तो किसी के बेटे हो अगर एक बेटा (भगत सिंह) मारा जाएगा तो इसे (शची) भी क्यों नहीं मरना चाहिए।'' मैंने उस दिन भगत सिंह को बीच में ही टोक कर कहा था।

उस रात भगत सिंह और राजगुरु मेरे ही यहाँ रहे। तीसरे दिन, अभी ठीक से भोर भी नहीं हुई थी। मैं, भगत सिंह और राजगुरु लाहौर स्टेशन पहुँच गए। पुलिस की भरमार थी। दो टिकट प्रथम श्रेणी के और राजगुरु के लिए तृतीय श्रेणी का टिकट लिया गया। आखिर नौकर जो बने थे। शची, भगत सिंह प्लेटफार्म पर चलते-चलते भगत सिंह ने शची को ठीक अपने चेहरे के सामने (ताकि मुँह ढक जाए) कर लिया। उसकी आड़ में चेहरा कुछ छिप-सा गया। ठंडक के बहाने कोट का कॉलर भी ऊपर चढ़ा था। फेल्ट कैप थोड़ी एक तरफ झुकी हुई थी। शची बाएं हाथ में भरी हुई पिस्तौल भगत सिंह के दाएँ हाथ में चेस्टर की जेब में। उँगलियाँ उसके घोड़े पर जमी थीं। भरी हुई एक पिस्तौल मेरे पास भी थी। एकदम सतर्क कि कहीं कुछ रोक-टोक हुई नहीं कि ''धायें धायें।''

गाड़ी चली। किसी ने पहचाना नहीं।

भैया चन्द्रशेखर आज़ाद रामनामी ओढ़े, रुद्राक्ष की माला पहने, छपा-तिलक लगाकर लाहौर से उसी ट्रेन से चले थे पर वे राह में ही उतर गए। बाद में पता चला कि मथुरा उतर कर आगरा पहुँच गए। राजगुरु भी बीच में कहाँ उतर गए, मैं नहीं जान सकी।

मैं और भगत सिंह लखनऊ पहुँच गए। भगत सिंह ने वहीं प्लेटफार्म से सुशीला दीदी को कलकत्ता तार किया ताकि वे स्टेशन आ सके। तार में मेरे नाम की जगह भगत सिंह ने 'दुर्गावती' लिख दिया जिससे कि खुफिया पुलिस को पता न चले।

सुशीला देवी सोचती रही कि ये दुर्गावती कौन है। यद्यपि यही सुशीला दीदी थी जिन्होंने मुझे पहले-पहल 'भाभी' कहना शुरू किया था।

दीदी ठीक समय पर हावड़ा स्टेशन पहुँचीं। वे (भगवतीचरण) भी आए। जब मैं भगत सिंह को लेकर स्टेशन पर उतरी तो वे भाव-विभोर हो उठे। मुझे वहीं प्लेटफार्म पर ही शाबाशी देने लग गए। पीठ थपथपाकर कहा, ''मैं समझता हूँ कि हमारी तुम्हारी शादी तो सच पूछो आज हुई है। इसके पहले तो मेरा ख्याल था कि हमारे-तुम्हारे पिता की थैलियों में शादी हुई थी।''

....ग्यारह साल की उम्र में ही व्याहता बन गई थी। पति से तीन साल छोटी थी। मेरी माँ पाँच बहनें थीं। नाम थे-गंगा, यमुना, सरस्वती, त्रिवेणी और गोदावरी। मेरी माँ यमुना थीं। माँ की मृत्यु, जब मैं कुल दस महीने की थी, तभी हो चुकी थी। मैं तब माँ को 'माँ' भी नहीं कह पाती थी। 'पम' कहती थी। लोग हँस पड़ते थे। भाई एक ढाई-

तीन साल का था, पर वह बारह-तेरह का होकर गुजर गया। भाई के न रहने पर पिता पं. बाँकेबिहारी भट्ट ने दूसरा विवाह किया। मैं विमाता की छाया में चलने लगी। एक दिन किसी ने रास्ते में कान की चीज़ (कोई आभूषण) उतार ली तो विमाता ने आसमान सिर पर उठा लिया। मार-पीटकर तीसरी कक्षा से ही पढ़ाई छुड़वा दी। मेरे पिता मुझे 'जय दुर्गा' कहते थे क्योंकि इलाहाबाद के कटरे वाले मकान के पास ही दुर्गा का मन्दिर था। वे दुर्गा के भक्त थे। दूसरी शादी के बाद पिताजी को वैराग्य की धुन लगी यों भी वे बड़े ईमानदार थे-जहां तक कि डाक से एक लिफाफे में दो लोगों को पत्र भेजना भी बेईमानी समझते थे। कहते थे कि एक लिफाफे में एक ही पत्र जाना चाहिए। मैं अब बुआ के नियन्त्रण में रहने लगी। उन्होंने भी नहीं पढ़ाया। वे स्वभाव से सख्त थीं। एक दिन किसी ने ब्राह्मण के नाते सीधे (दाल-चावल-आटे) की बड़ी-सी परात भेज दी तो नाराज़ हो गई। परात को लात मार दी। बुआ का बड़ा लड़का लाहौर में नौकरी करता था। एक बार ये उसके पास गई तो उन्होंने वहाँ बोहरा परिवार देखा। घर देखा, उन्हें भाया। कहने लगी कि पंजाब के लोग अच्छे हैं, इधर के भ्रष्ट हैं। मेरे मायके व ससुराल वाले आगरा के ही थे। बोहरा परिवार भी आगरा का ही था लेकिन लाहौर में जा बसा था। विवाह तय हो गया। उनकी (भगवतीचरण) की उम्र तब पन्द्रह-सोलह की रही होगी। यह सन् 1917-18 की बात है। विवाह के बाद मैं लाहौर आई। यहाँ पढ़ना शुरू किया।

वे नागर ब्राह्मण थे। घर में लेन-देन का काम होता था, इसलिए 'बोहरा' नाम पड़ गया। उन्होंने एम.एस.सी. किया। जर्मनी जाने का विचार था कि तभी पिता को अंग्रेजों ने रायबहादुरी का खिताब देना चाहा और जिस दिन इस काम के लिए घर में पानी का छिड़काव तथा रोशनी आदि की तैयारियाँ हो रही थीं, रायबहादुरी के विरोध में उन्होंने (पति भगवतीचरण ने) घर छोड़ दिया। उधर मेरे पिता ने संन्यास ले लिया। सो, उक्त बाल-विवाह के ही कारण वे अपने विवाह को उभयपक्ष के पिताओं की थैलियों का ब्याह ही मानते थे। दोनों घराने सम्पन्न थे। उस जमाने में मुझे अपने ससुर से चालीस हजार रुपए मिले थे। संन्यासी होने के बाद पिता श्री भट्ट ने भी मेरे लिए पाँच हजार रुपए श्री बटुकनाथ अग्रवाल के घर रख दिए थे ताकि जरूरत के समय उनकी बेटी को दिए जा सकें। पति के तीन मकान लाहौर में थे, दो इलाहाबाद में। पिता मेरी क्रांतिकारिता तो पसन्द नहीं करते थे पर उन्होंने कभी रास्ता भी नहीं रोका।

सांडर्स वध के पहले की बात है। भगत सिंह, शहीद करतार सिंह के बड़े भक्त थे। करतार सिंह के चित्र का अनावरण होना था। मेरे पति ने कहा, ''खद्दर खरीद लाओ।'' खद्दर लाया गया। फिर मुझसे बोले, ''इसे लाल रंग से रंग डालो।'' मैं कह उठी, ''उससे नहीं, इसको खून से रंग देती हूँ।'' तत्काल मैंने ब्लेड से अपनी उँगलियाँ चीर डालीं। कपड़ा रक्तस्नात हो उठा। सबसे ज्यादा खून सुखदेव ने छिड़का। उसका स्वभाव ही ऐसा था। मेरे सामने ही एक बार सुखदेव ने अपने हाथ पर गुदा हुआ नाम मोमबत्ती से जला डाला था ताकि कभी पहचान न की जा सके। हाथ कई महीने पका रहा।

मैं इन्हें 'बड़े सुखदेव' कहती थी। एक रात ये मेरे यहाँ आए। साथ में एक भारी अटैची लिये थे। उसमें बम थे। बम निकाले गए और अन्दर कमरे में रख दिए गए। मैंने सोचा, सुखदेव इन्हें कल उठा ले जाएँगे लेकिन पुलिस रात में ही आ गई। सुखदेव वहीं सो गए थे। जगे तो कहने लगे, ''तलाशी तो स्टेशन पर ही हुई थी। शेविंग (दाढ़ी बनाने का सामान अटैची में ऊपर था, उसी को दिखाकर पिंड छुड़ाया था। यों पुलिस को सूचना थी मेरे बारे में कि कोकीन आदि का काम करने वाला कोई आदमी है। खैर, मैं उपाय सोचते-सोचते उठी। पुलिस दरवाजा भड़भड़ा रही थी। पुलिस बहुत थी। मैंने दरवाज़ा खोलने से इनकार कर दिया। कहा, ''मैं यहाँ अकेली हूँ। कोई आदमी नहीं है।'' साथ ही तुरन्त सब बम अपने जेठ के घर भूसे में दबा दिए। उसमें बड़ा-सा ताला बन्द कर दिया। दूसरी तरफ विलायती राम की तरफ से दरवाज़ा खोलकर सुखदेव को निकाल दिया। छतों-छतों चलकर घुप्प अँधेरे में वे नौ-दो ग्यारह हो गए। फिर मैंने दरवाज़ा खोल दिया। खूब तलाशी हुई। इतनी पुलिस कभी नहीं आई थी लेकिन वहाँ क्या रखा था। पुलिस अपना-सा मुँह लेकर वापस गई।

एक दिन मुझे मुल्तान भेजा गया। वहाँ से बम लाने थे। वहाँ एक जंगल में कच्ची-सी कोठरी थी। छप्पर पड़ा था। उसी छप्पर के नीचे ठहरना पड़ा था। वापसी की बात है बम साथ में थे। मुझसे बमों का बोझ उठाए उठता नहीं था। उठाने पर आवाज़ होती थी। स्टेशन पहुंची तो यहां पुलिस का डर, किसी तरह लाहौर लौटी जहाँ अमृतधारा की कोठी

थी। उसी कोठी के पास ताँगा रोक दिया। सामान (बम) भी वहीं रहने दिया। घर आई। वहाँ से लीला को भेजा। इस तरह बम सुरक्षित रूप से ठिकाने तक ले आए गए। वे बम लम्बे किस्म के थे। बमों के कुछ खोल भी लाई थी। मुझे अब यह याद नहीं है कि इनका इस्तेमाल असेम्बली में होना था या वाइसराय की ट्रेन उड़ाने में।

मैं शस्त्रास्त्र लाने के लिए राजस्थान भी भेजी गई थी। वहाँ जयपुर के वैद्य मुक्तिनारायण शुक्ल के पास से कई माउज़र व पिस्तौलें लानी थीं। मेरे साथ श्री रामचंद्र भी भेजे गए थे। वापस आई थी श्री विश्वनाथ वैशम्पायन के साथ। मैंने वे माऊजर छाती से अड़ा लिए थे। पिस्तौल पेट पर बाँधी थी। कुछ रिवाल्वर भी थे और कारतूस भी, गनीमत यह थी कि उन दिनों सामान की ही तलाशी होती थी, आदमी की नहीं।

.... और हाँ, राजगुरु मुझे दुख है और रहेगा कि काश, मैं उसकी सूरत तो ठीक से देख लेती। वह भैया (आजाद) का पूना स्थित 'एक्सपर्ट मार्क्स' (प्रवीण-निशानेबाज) माना जाता था।

अरे, एक दिन राजगुरु आए। आते ही सवाल किया, ''भगवती हैं?'' ''नहीं हैं।'' मैंने कह दिया।

राजगुरु 'अच्छा' कहकर वहीं खड़े ही रहे। न मुझसे कुछ कहा, न मैंने उनसे कुछ पूछा। राजगुरु ने अपनी जेबों में सन्तरे ठूंस रखे थे। इत्मीनान से वहीं छील-छील कर खाते रहे। एक-एक कर सब खा गए। वहाँ एक तख्त पड़ा था। शायद उस पर कुछ देर बैठे भी, मैं घर के कामों में व्यस्त हो गई थी।

और फिर एक दिन आया, जब राजगुरु फरार थे। सांडर्स वध के पुरस्कार में फाँसी का फन्दा उनके गले में झूलने वाला था। एक दिन मैं सुशीला दीदी के साथ दिल्ली के कुदसिया बाग में उनसे मिलने गई। साथ में कुछ सन्तरे ले गई। वहाँ ये ही मिले। मैं राजगुरु को सन्तरे खिलाने बैठी। शिकायत करते हुए वे बोले, ''आज जब मैं मरने जा रहा हूँ, तब सन्तरे खिला रही हैं जबकि उस दिन तो मैं खड़े-खड़े ही सन्तरे खाकर दिल मज़बूत करता रहा, भाभी ने बैठने को भी नहीं कहा।'' जिस दिन दिल्ली की असेम्बली में बम फेंका गया, भगत सिंह ने पर्चा लिखकर मुझे बुलाया था। सुशीला दीदी को भी। पर्चा पाकर मैं व दीदी गई थीं। शची भी साथ था। उसे सुखदेव ताँगे पर बिठाकर चल रहा था। उधर साइमन कमीशन के विरोध में उस दिन असेम्बली धुएँ से भर उठी थी।

जब पुलिस भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को गिरफ्तार करके ले जा रही थी, शची भगत सिंह को देखते ही चिल्लाया-''लम्बे चाचा जा रहे हैं।'' एक दिन जेल में छिपाकर एक चिट्ठी मेरे नाम लिखी भगत सिंह ने। वह मुझे मिल गई थी। भगत सिंह चिट्ठी लिखते-लिखते जरूर रोया होगा क्योंकि कई जगह अक्षर बिगड़ गए थे। मिट गए थे भगत सिंह के आँसुओं से। चिट्ठी में लिखा था-

''भाभी, भगवती भाई के साथ हम लोगों ने बड़ा अन्याय किया है...'' उन्हीं दिनों दिल्ली में मेरी भेंट चन्द्रशेखर आज़ाद से हुई। मैं उन दिनों सुशीला दीदी के साथ रात-दिन दौड़ती-फिरती थी। लाहौर षड्यन्त्र केस का जो मुकदमा चल रहा था, उसके लिए धन की जरूरत थी। अच्छे वकील चाहिए थे। डिफेन्स कमेटी बनी। उसमें डॉ. सत्यपाल, किचलू और गोपीचन्द भार्गव आदि शामिल थे। पहले ज़माने में और अब यह परिवर्तन दिखा कि लोग खुल्मखुल्ला ऐसे मुकदमे में चन्दा देते थे। शाम को एक जुलूस निकाला जाता था जिसमें मेरे साथ कई महिलाएँ रहती थीं। उसमें पाँच-छह महिलाएँ एक दुपट्टा फैलाकर चलती थीं। दुपट्टे में नोट पड़े रहते थे। सख्त ताकीद थी कि ये पैसे कोई खाने-पीने में खर्च न करें। फिर 'हिन्दी भवन' में ये पैसे गिने जाते थे। इन्हीं पैसे से भगत सिंह तथा लाहौर षड्यन्त्र केस के साथियों के लिए सामान आदि भी खरीदा जाता था। उधर मेरे घर पुलिस तलाशियों की धूम मचाए हुए थी।

मैं लाहौर लौटी लेकिन चुप नहीं बैठी। उस जेल में जहाँ भगत सिंह सहित सोलह साथी कैद थे, बराबर सम्पर्क बनाए रखा। उनके सन्देश रातों-रात दल के अड्डों तक पहुँचाती रही। मेरा गिरफ्तारी वारन्ट निकल गया और फिर मैंने रात के ग्यारह बजे घर छोड़ दिया, शायद हमेशा के लिए।

इन दिनों दिल्ली में सक्रिय सदस्य सर्वश्री काशीराम, विमल प्रसाद जैन, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', भवानी सहाय, प्रो. नन्दकिशोर निगम, मास्टर हरकेश, भवानी सिंह, भगीरथ, विश्वम्भर, डॉ. बाबूराम, मास्टर छैलबिहारीलाल, कैलाशपति, ख्याली राम गुप्ता, कपूरचन्द तथा हरद्वारीलाल मौजूद थे।

'दिल्ली में एक बम फैक्टरी भी चलाई गई। इसके

इन्चार्ज थे विमल प्रसाद जैन। यह फैक्टरी 'हिमालयन टायलेट्स' नाम के कारखाने से काम करती थी, डेवालान मुहल्ले में साबुन का काम तो महज बहाना था। बनती थी बमों के लिए पिकरिक एसिड, पोटेशियम सायनाइड, गनकाटन, नाइट्रोग्लिसरीन तथा प्लिकोरीन गैस। वात्स्यायन तथा यशपाल पिकरिक बनाते थे। प्रकाशवती और गिरवर सिंह यहीं रहते हैं। विमल प्रसाद जैन की पत्नी भी इसी कारखाने में रहती थीं।

आज़ाद और उन्होंने (भगवतीचरण) मिलकर भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को जेल से छुड़ाने की योजना बनाई। उसके लिए बहावलपुर कोठी में क्रान्तिकारियों का पड़ाव पड़ा। दल के एक सदस्य छैलबिहारी बैरा बने ताकि लोग समझें कि कोई सम्भ्रान्त परिवार है। पुलिस के सन्देह से बचने के लिए मुझे और दीदी को भी वहाँ रखा गया। आज़ाद, धन्वन्तरि, यशपाल, सुखदेव और वैशम्पायन वहाँ थे। मैं दिन भर मुकद्दमे की दौड़-धूप में व्यस्त रहती। रात को ग्यारह-बारह बजे धन्वन्तरि के साथ बाहर जाती। पुलिस की नज़रों से बचते हुए दल के लोगों से भेंट करती रुपए-पैसे और सन्देश इधर से उधर पहुँचाती लौटते-लौटते रात को दो बज जाते। कभी लौट पाती कभी नहीं।

...उस दिन बहावलपुर कोठी में खिचड़ी बनी थी। उन्होंने (भगवतीचरण) खिचड़ी खाई। विश्वनाथ वैशम्पायन बड़े खुश थे। बारात का बहाना था। काँटा-छुरा पटक रहे थे ताकि पड़ोस के लोग समझें कि कोठी में लोग खाना खा रहे हैं। (यद्यपि बमों में मसाला भरा जा रहा था।) बैरा (छैलबिहारी) को खूब ऊँची आवाज़ देकर बुला रहे थे। जमादारिन को कूड़ा उठा ले जाने के लिए कहा जा रहा था, जबकि जमादारिन कोई थी नहीं बहावलपुर कोठी में कुछ ऐसा ही समा बँधा था।

एक बजे दिन तक उस रोज बम भरे जाते थे। यद्यपि तीन लोग बम परीक्षण के लिए पहले ही बाहर जा चुके थे। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को छुड़ाने के लिए जो बम बने थे, उनमें से एक का परीक्षण के लिए घने जंगल में एक स्थान पर रुके। धूप और तपन रावी तट पर वे (भगवतीचरण), सुखदेवराज और विश्वनाथ तो सर्वप्रथम सुखदेवराज ने बम फेंककर देखना चाहा। बम हाथ में लेने पर पता चला कि उसकी पिन ठीक नहीं बैठी है। फिर वैशम्पायन ने उसको स्वयं फेंकने का आग्रह किया लेकिन वे (भगवतीचरण) किसी तरह नहीं माने। कहने लगे-''तुम लोग पीछे हट जाओ मैं फेंकता हूँ'', और जैसे ही अपने दोनों साथियों को पीछे कर उन्होंने बम फेंकना चाहा, अभी वे पिन निकाल पाए थे कि बम फट गया। भयंकर आवाज़ और चतुर्दिक धुएं के बादल (भगवती चरण) शल-विशल हो वहीं गिर गये और फिर नहीं उठे। उनका एक हाथ कलाई से कट गया था और दूसरे के हाथ की उँगलियाँ भी उड़ गईं थीं। पेट में भारी जख्म हो गया था। आँतें बाहर लटक रही थीं। यह विवरण मुझे वैशम्पायन ने बताया था वे प्रत्यक्ष साक्षी थे।

उस दिन चार बजे शाम को सुखदेव राज लौटे थे ताँगे से उतरते समय लँगड़ा कर चल रहे थे। उनका पैर आगे से जख्मी था। जूता कट गया था। सुखदेव राज को लिटा दिया गया। उजाला होने से पहले ही आजाद, धन्वन्तरि आदि रावी तट पर गए। नदी में इतना पानी न था कि शव-प्रवाह हो पाए। इसलिए वहीं जंगल में गड्डा खोदकर शहीद (भगवतीचरण) का शव दबा दिया गया। बाद में पुलिस ने वह जगह खोदी और अस्थियाँ बीनकर अदालत भेजीं।

आजाद रो रहे थे। सभी शोक विह्वल थे। मैंने कहा, पति नहीं रहे, लेकिन दल का काम चलेगा, रुकेगा नहीं। मैं करूंगी...

''भाभी, तुम हमारी माँ-बहन के बराबर हो।'' आजाद ने कहा, ''तुम्हारा बच्चा हमारा बच्चा है।''

जब तक जिए, आज़ाद भैया ने ऐसा ही निभाया। मैंने अपना संकल्प व्यक्त किया-''भैया, भगत सिंह और दत्त को छुड़ाने की योजना रद्द नहीं होगी।'' मैंने बहुत आग्रह किया ''संघर्ष में मुझे भी साथ चलने दीजिए और यह हक सर्वप्रथम मेरा है'' पर आज़ाद ने स्वीकृति नहीं दी।

भगत सिंह और दत्त को जेल से छुड़ाने की योजना कामयाब नहीं हो पाई। एक दिन मैं जेल में भगत सिंह से मिलने गई तो सरदार ने कहा, ''भाभी, चलो देखो। मैंने क्या बनाया है। आओ खिलाऊँ....''

मैं बैरक में पहुंची। जेलर भी साथ गया। सहानुभूति रखता था। भगत सिंह ने एक छोटा सा स्टोव दिखाया। किलो का होगा। उस पर खोया बनाकर रख छोड़ा है। शक्कर भी उसमें मिला ली है।

''लो भाभी, देखो कैसा बना है।'' खाया और खाते-खाते सोचती रही... दिन भर बैठकर बनाया होगा। किसी से स्टोव माँगा होगा... फाँसी पर चढ़ने जा रहे थे, फिर भी

कैसी मस्ती थी, कैसा अलबेलापन, कैसी निर्वेद और निस्पृह जो योगियों को भी दुर्लभ है।

पता चला कि यद्यपि आज़ाद के प्रयास भगत सिंह को जेल से बचा लाने के जारी थे किन्तु भगत सिंह ने स्वयं इनकार कर दिया था।

उस दिन भगत सिंह की रिहाई का प्रश्न लेकर मैं गांधी जी के पास पहुँची थी। रात साढ़े ग्यारह का समय था। नेहरू जी यहीं घूम रहे थे। देखा तो ले जाकर बिठाया गांधी जी को फुर्सत मिली तो नेहरू जी अपने साथ ही मुझे और सुशीला देवी को अन्दर ले गए। गांधी जी ने मुझे देखा तो कहा, ''तुम आ गई, अपने को पुलिस में दे दो मैं छुड़ा लूँगा।''

गांधी जी ने सोचा होगा कि शायद मैं अपना दुख दूर करने आई हूं। मैंने उससे कहा, ''मैं इसलिए नहीं आई, बल्कि इसलिए कि जहाँ आप ओर कैदियों को छुड़ाने को बात कर रहे हैं वहाँ भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को भी छुड़ाने की शर्त वाइसराय के सामने रखें।''

गांधी जी के लिए यह कहाँ सम्भव था। मैंने उन्हें नमस्कार किया और चल दी।

इसके बाद आज़ाद भैया ने मुझे, वैशम्पायन और सुखदेव राज को बम्बई भेजा। पृथ्वी सिंह वहीं थे। चलते समय आजाद ने बहुत समझाकर कहा, ''कोई बचपना न करना।''

यहाँ हमने पृथ्वी सिंह के साथ लेमिंग्टन रोड पर गवर्नर पर गोलियाँ चलाईं। सुखदेव राज साथ थे। मैं कानपुर आईं। आज़ाद वहाँ थे। वे बहुत क्रुद्ध थे। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की पर ये अनुशासन के विरुद्ध कुछ भी सुनना नहीं चाहते थे। मुझे और सुखदेव राज को उन्होंने बम्बई में संगठन कार्य के लिए भेजा था न कि किसी 'एक्शन' (गोलीकांड) के लिए। मैं बार-बार कहती, ''भैया, सुनो तो''।

''कुछ नहीं, मैं कुछ नहीं सुनना चाहता।'' लेकिन बाद में सब ठीक हो गया। आज़ाद का क्रोध ऐसा था कि उफान आया और गया। बाद में दिल एकदम साफ।

जब रावी तट पर बम विस्फोट में मेरे पति की अचानक बम से जख्मी होकर मृत्यु हो गई और उस समय मुझे रात-दिन भैया (आज़ाद) के साथ रहने का और उन्हें और भी निकट से देखने का अवसर मिला तो मैंने उन्हें दो विरोधी शक्तियों का एक ही स्रोत समझा। उनमें कठोरता और कोमलता, दोनों ही भावनाएं असीम थीं और 27 फरवरी, 1931 के दिन जब भैया की अन्तिम विदाई के मेरे आँसू सूखे तो मैंने भैया को अपने सपनों में डूबा हुआ एक कलाकार कहा, ऐसा कलाकार जिसका अन्दर-बाहर सभी पवित्र था, जिसका हृदय कोमल था किन्तु कर्त्तव्य भावना उतनी ही कठोर। भैया का कलाकार जिस चित्र की रचना में रमा था, वह पूर्ण न होती देखकर उसका मन बुझ रहा था और उसी समय मानो आँधी के किसी झोंके ने उसके चित्र को गिराकर चकनाचूर कर दिया और साथ ही उनकी हृदयगति को भी ठंडा कर दिया सदा के लिए।

और भगत सिंह। वह कुश वक्ता था। उसकी आवाज़ में गर्जना थी वह जो कुछ भी कहता था वह सबके हृदय को छू लेता था। वह मौत की ओर बढ़ा और बढ़ता ही गया यद्यपि उसे भी जीवन प्यारा था। वह सौन्दर्य का उपासक था, कला का प्रेमी था और जीवन के प्रति उसे आसक्ति थी। जिस वस्तु को अत्यधिक मूल्य है उसी को तो वह मां के चरणों पर सुगंधित पुष्पों के रूप में चढ़ाना चाहता था।

अंततः 23 मार्च 1931 आया। भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु फाँसी के तख्ते पर झूल गए, शहीद हो गए। वह अभिनय समाप्त हो गया। पर्दा गिर गया। उनका पार्थिव रूप लुप्त हो गया किंतु भावना के संसार में वे देश की आत्मा में प्रवेश पा गए।

(स्रोत : पुस्तक ''क्रांति की धरोहर'' संपादक : ई. राज त्रिपाठी, संकलन : राहुल इंकलाब)

हमें जवाब चाहिए

नफ़स - नफ़स
क़दम - क़दम
बस एक फ़िक्र
दम-ब-दम
घिरे है हम सवाल से
हमें जवाब चाहिए!

तर्कशील सोसायटी हरियाणा के पुरोधा मास्टर बलवंत सिंह नहीं रहे

तर्कशील सोसाइटी हरियाणा के प्रख्यात योद्धा मा. बलवंत सिह का 31 जनवरी 2024 को कुरुक्षेत्र में असामयिक निधन हो गया। ब्रेन हेमरेज के कारण वे अस्पताल में दाखिल थे।

11 फरवरी के दिन तर्कशील सोसाइटी हरियाणा ने उनके परिवार के साथ मिलकर एक बडी शोक सभा का आयोजन कर कुरूक्षेत्र के अंबेडकर भवन मे नम आंखों से मास्टर जी को श्रंधांजली दी। शोक सभा में पूरे हरियाणा से व पंजाब से आये अनेक साथियों समेत बडी संख्या में तर्कशील साथियों ने शिरकत की।

भरे सभा भवन में तर्कशील साथियों ने मा. बलवंत के साथ बिताये अपने यादगार संस्मरण साझा किये। प्रमुख वक्ताओं में फरियाद सिंह सनियाणा, बलबीर सैनी, बलजीत भारती, करमजीत सिंह ठसका, जय प्रकाश शास्त्री, मा. राकेश ट्री मेन, बलदेव महरोक, राजेश पेगा, रामेश्वर दास, सुदेश रानी, पलविंदर सिंह तथा पंजाब की विभिन्न तर्कशील इकाईयों के विशेष तौर पर पहुंचे बलबीर लौंगोवाल, हरचंद सिंह भिंडर, व सुमीत सिंह थे।

मा. बलवंत सिह एक सच्चे तर्कशील थे जिनकी कथनी और करनी एक थी। अपने जीवन के दौरान उन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि मरणोपरांत उनका शरीर अग्निभेंट न कर किसी मेडिकल कॉलेज को चिकित्सा खोजों के लिए दे दिया जाये। अत: उनकी इच्छानुसार उनके परिवार ने उनके पार्थिव शरीर को तर्कशील सोसाइटी हरियाणा के सहयोग से आयुर्वेदिक कॉलेज कुरुक्षेत्र को अर्पित कर दिया। इस समय बडी संख्या मे तर्कशील साथी उनके शव को फूलों से सजा कर उक्त कालेज तक पहुंचाने गये।

जैसा कि मास्टर जी ने इच्छा प्रकट की थी, कि उनकी मृत्यु क बाद कोई पूजा-पाठ, कीर्तन, या अखंड पाठ न करवाया जाये, उनके परिवार के सदस्य इस कार्य के लिए प्रशंसा के पात्र हैं कि मास्टर जी की इच्छा का सम्मान करते हुए उन्होंने कोई धार्मिक आडम्बर नहीं किया। इस प्रकार मास्टर जी मरणोपरांत भी लोगों की प्रेरणा बने।

मा. बलवंत सिह हरियाणा में तर्कशील आंदोलन की नीव रखने वालों में प्रमुख थे और उनके प्रयास से विभिन्न जिलों में तर्कशील इकाई यां स्थापित हुई।

यही नहीं उनका सारा जीवन सामाजिक कार्यों और लोगों को अंधविश्वास के अंधेरे से बाहर निकालने और विज्ञान का प्रकाश फैलाने में समर्पित रहा।

कई बरसों से वे हर सप्ताह मानसिक रोगियों के लिए निशुल्क कैंप लगाते चले आ रहे थे। अंधविश्वास में फंसे मानसिक रोगियों को अंधेरे से निकाल हजारों परिवारों को बरबाद होने से बचाया।

मास्टर बलवंत सिंह ने अन्य साथियों से मिलकर तर्कशील सोसाइटी की ओर से ''**तर्कशील पथ**'' एक हिंदी पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया जो पिछले कई सालों से अनवरत निकल रही है।

मास्टर जी के देहांत से हरियाणा के तर्कशील आंदोलन में एक बड़ी रिक्तता पैदा हो गई है।

-बलदेव सिंह महरोक
9253064969

पहिला आंदोलन-

शायद बीज के किया होगा
मिट्टी के विरुद्ध
और फूट पड़ा होगा
पौधा बनकर।
या फिर शिशु ने-
कोख के भीतक किया होगा
जन्म लेने के लिए।
हर बार-
आंदोलनकारी को प्रेम मिला है,
मिट्टी से भी,
और माँ से भी।
क्योंकि-
माँएँ जानती हैं कि
आंदोलन के बग़ैर
सृजन संभव नहीं।

-अशोक कुमार

कृष्ण बरगाड़ी स्मृति सम्मेलन-2024

तर्कशील आंदोलन के यशकायी नायक कृष्ण बरगाड़ी के 22वें स्मृति दिवस को समर्पित 'भारतीय दर्शन एवं चार्वाक दर्शन' विषय पर एक राज्य स्तरीय सेमिनार एवं सम्मान समारोह का आयोजन तर्कशील भवन, बरनाला में किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रख्यात विद्वान एवं लोकतान्त्रिक अधिकार परिषद हरियाणा के अध्यक्ष डॉ. सुखदेव सिरसा, प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता हिमांशु कुमार, तर्कशील सोसायटी पंजाब के प्रांतीय प्रभारी मास्टर राजिंदर भदौड़, साहित्य विभाग के प्रांतीय प्रभारी हेम राज स्टेनो एंव कृष्णा बरगाड़ी की जीवन साथी राजिंदर कौर बरगाड़ी और तर्कशील नेत्री कुलवंत कौर ने की। पंजाब के सभी क्षेत्रों और इकाइयों के बड़ी संख्या में तर्कशील नेताओं और कार्यकर्ताओं के अलावा, कृष्णा बरगाड़ी के परिवार और करीबी रिश्तेदार, तर्कशील कारवां के बिछुड़े साथियों के परिवारों के सदस्यों और विभिन्न लोकतांत्रिक और साहित्यिक संगठनों के सदस्य और लेखक भी इस आयोजन में शामिल थे। कार्यक्रम की शुरुआत तर्कशील कार्यकर्ता नरेंद्र पाल पटियाला और नरेंद्र पाल बरनाला के क्रांतिकारी गीतों से हुई।

कार्यक्रम के आरंभ में विशिष्ट अतिथियों एवं दर्शकों का स्वागत करते हुए सोसायटी के मुद्रण विभाग के प्रमुख राजपाल सिंह ने तर्कशील आंदोलन में कृष्णा बरगाडी की महत्वपूर्ण भूमिका पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि कृष्णा बरगाड़ी ने व्यक्तिवाद के अलावा, भ्रष्ट राज्य व्यवस्था को जन-समर्थक व्यवस्था में बदलने के लिए अज्ञानता, अंध विश्वास, तथाकथित चमत्कार, सामाजिक बुराइयों, लूटपाट, अन्याय और जबरदस्ती के खिलाफ लड़ाई लड़ी। उन्होंने खालिस्तानी आतंकवाद के काले दौर में तर्कशील आंदोलन का नेतृत्व किया और कैंसर से जूझते हुए मरणोपरांत अपना शरीर चिकत्सीय उपयोग हेतु प्रदान दान करके तर्कशील सहयोगियों और समाज के लिए प्रेरणा बने। उन्होंने तर्कशील सोसायटी के कारवां से जुड़े अंतिम अलविदा कर चुके बीस से अधिक तर्कशील सहयोगियों को भी याद किया और तर्कशील आंदोलन के विकास और जन-समर्थक सामाजिक परिवर्तन में उनके अमूल्य योगदान के लिए उनकी प्रशंसा की और संबंधित परिवारों को तर्कशीलता के साथ लगातार जोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया।

आयोजन के प्रथम चरण में मुख्य वक्ता प्रख्यात विद्वान डॉ. सुखदेव सिरसा ने अपने संबोधन में कहा कि दर्शनशास्त्र का आदिकाल से ही मानव जीवन से सीधा संबंध रहा है और भारत में प्रसिद्ध दार्शनिक चार्वाक के भौतिकवादी दर्शन की वैज्ञानिक विचारधारा उनके वैचारिक दर्शन से कहीं अधिक जनपक्षधर और प्रभावी रही है। उन्होंने कहा कि चार्वाक के भौतिकवादी दर्शन ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के माध्यम से तथाकथित आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म, काल्पनिक देवताओं, कर्मकांडों, अंधविश्वासों और मिथकों का विरोध किया और भारतीय समाज में वैज्ञानिक चेतना की अवधारणा को मजबूती से स्थापित किया। उस समय के बुद्ध, जैन, मीमांसा और शांख्य दर्शनों ने भी चार्वाक के भौतिकवादी दर्शन को बढ़ावा दिया। उन्होंने चेतना को पदार्थ और श्रम का उत्पाद बताया और कहा कि जीवन की उत्पत्ति से मानव विकास की यात्रा लाखों वर्षों की प्रक्रिया है जिन्हें प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने अपने विकासवाद के सिद्धांत में इसे वैज्ञानिक तथ्यों के साथ सिद्ध किया है उन्होंने इस बात पर अफसोस जताया कि वर्तमान सांप्रदायिक शासक वर्ग पौराणिक कथाओं को इतिहास के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं और शिक्षा के देवीकरण और व्यावसायीकरण से वैज्ञानिक चेतना विकसित करने के संवैधानिक अधिकार को खत्म किया जा रहा है जिसके खिलाफ आम लोगों को जागरूक किया जाना बेहद आवश्यक है। तर्कशील सोसायटी व अन्य प्रगतिशील और लोकतांत्रिक संगठनों को समाज के हित मे और मजबूती से लड़ने की जरूरत है।

इस आयोजन की मुख्य उपलब्धि यह रही कि मुख्य वक्ता के आधे घंटे के संबोधन को दर्शकों ने पूरी रुचि के साथ सुना और कई दर्शकों को इस महत्वपूर्ण और गंभीर विषय पर और अधिक विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता की बात कही।

कार्यक्रम के दूसरे और अंतिम चरण के अवसर पर पूरी प्रदेश कमेटी ने आदिवासियों के मानवाधिकार के लिए समर्पित प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता हिमांशु कुमार को कृष्ण बरगाड़ी मेमोरियल अवार्ड, राशि देकर सम्मानित किया. इसके साथ ही मुख्य वक्ता डॉ. सुखदेव सिरसा को तर्कशील पुस्तकों का सेट देकर सम्मानित किया गया।

इस अवसर पर बोलते हुए सामाजिक कार्यकर्ता हिमांशु कुमार ने कहा कि हम जिस आतंक और फासीवादी शासन में रह रहे हैं, उसकी चुनौतियाँ और खतरे बेहद दुखदायी हैं और तर्कशील सोसायटी को लंबे समय से ऐसे खतरों का सामना करना पड़ रहा है,उन्होंने कहा कि साम्राज्यवाद समर्थक सरकारें कॉरपोरेट घरानों से जल, जंगल, जमीन और अन्य खनिजों को लूटने के लिए गरीब आदिवासियों को मारने और उजाड़ने पर आमादा हैं और इस सरकारी जबरदस्ती का विरोध करने वाले बुद्धिजीवियों, पत्रकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं पर झूठे मामले दर्ज किए गए। उन्हें अनिश्चित काल के लिए जेलों में डाला जा रहा है, जिसके खिलाफ हमें और सभी जनहितैषी सार्वजनिक एवं लोकतांत्रिक संगठनों को संगठनात्मक स्तर पर और अधिक आवाज उठाने की जरूरत है।

इससे पहले सोशल मीडिया विभाग के राज्य प्रमुख संदीप धारीवाल भोजा ने पिछले कई दशकों से सरकारी जबरदस्ती के खिलाफ और आदिवासियों के लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए हिमांशु कुमार द्वारा निभाई गई उल्लेखनीय भूमिका के बारे में जानकारी दी। इस अवसर पर कानून विभाग के राज्य प्रमुख जसविंदर फगवाड़ा अनुच्छेद 295 ए के तहत वैज्ञानिक विचारधारा और इस संबंध में अभिव्यक्ति और समूहों की स्वतंत्रता पर सरकारी और सांप्रदायिक हमलों के खिलाफ एक व्यापक सार्वजनिक अभियान शुरू करने की बात की।

इस अवसर पर प्रांतीय संगठन प्रमुख मास्टर राजेंद्र भदौड़ ने तर्कशील परिवारों, तर्कशील कार्यकर्ताओं और मुख्य वक्ता और सम्मानित व्यक्तित्वों सहित सभी दर्शकों को कार्यक्रम में उनकी भागीदारी और सहयोग के लिए धन्यवाद दिया और तर्कशील सोसायटी के सामने आने वाली चुनौतियों से लड़कर आगे बढ़ने का वादा किया।

इस अवसर पर सम्मान पत्र वाचन एवं मंच संचालन का दायित्व विद्यार्थी चेतना परीक्षा विभाग के राज्य प्रभारी राम स्वर्ण लखेवाली ने निभाया। कार्यक्रम की पूरी व्यवस्था की जिम्मेदारी राज्य वित्त प्रमुख राजेश अकलिया, तर्कशील साथी अवतार बरनाला, कुलदीप नेनवाल और बिंदर ने संभाली।

इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए चंडीगढ़ जोन के वरिष्ठ नेता जरनैल क्रांति, कृष्ण बरगाड़ी का परिवार, प्रेम स्मालसर यूएसए, जगर सोढ़ी यू.एस.ए., गुरप्रीत भदौड कनाडा, भजन सिंह कनाडा, साधु सिंह कनाडा, सुरिंदर सिंह मानसा, विक्रम बठिंडा, मास्टर राजेंद्र भदौड़, जसवंत जस, जगदीश रायपुर डब्बा एवं मलिकियत भाई रूपा ने विशेष आर्थिक सहयोग प्रदान किया। इस अवसर पर तर्कशील साहित्य वैन की प्रदर्शनी भी लगाई गई।

इस अवसर पर पारित प्रस्तावों में पंजाब सरकार द्वारा धारा 295ए के तहत तर्कशील और सामाजिक कार्यकर्ताओं के खिलाफ अवैध मामले दर्ज करने का कड़ा विरोध किया गया और इन मामलों को बिना शर्त रद्द करने की मांग की गई और तर्कशील सोसायटी पंजाब ने संयुक्त किसान मोर्चा और केंद्रीय व्यापार मंडल केंद्रीय ट्रेड यूनियनों के ज्वाइंट फोरम के आह्वान का पुरजोर समर्थन करने का निर्णय लिया गया.

इस अवसर पर अन्यों के अलावा जसवन्त मोहाली, सुमीत अमृतसर, अजीत प्रदेसी, गुरप्रीत शाहना, जोन नेता मास्टर परमवेद संगरूर, सुरजीत टिब्बा जालंधर, गुरुमीत खरड चंडीगढ़, सतपाल सलोह नवां शहर, राजवंत बागरिया अमृतसर, अक्षय कुमार पटियाला, प्रवीण जंडवाला मुक्तसर, कुलविंदर नगारी, लेखक हरचरण चहल, अग्गर सोढ़ी यूएसए, मुख्तियार गोपालपुर, संदीप दर्दी, सोहन सिंह माझी, भूपिंदर फौजी, मास्टर जगदीश रायपुर डब्बा, मास्टर राम कुमार भदौड़, विक्रम बठिंडा, रवींद्र कुमार, कुलजीत डंगरखेड़ा, लेखक कुलदीप मनारूके , मेला राम बीईओ, अनमोल सिंह, कैप्टन मानांवाला, जसवन्त बोपाराय, जसवन्त जस्स, भूरा सिंह महिमा सरजा, चन्नन वांडर, जुझार लोंगोवाल, ज्ञान सिंह बठिंडा, रमेश कुमार, हरजिंदर जलालपुर, प्रीतपाल बठिंडा, शमशेर नूरपुरी, नसीब चंद बब्बी, परमजीत सिंह, चरणजीत पटवारी, सुखविंदर खारा, निर्मल पटवारी, प्रोफेसर अवतार दीप, विश्वकांत सुनाम, राम कुमार पटियाला, सुरिंदर पाल पिद्दी, मंजीत घनगस, परमजीत कौर, बलविंदर कुमार, अमृत ऋषि आदि शामिल थे।

सुमीत अमृतसर
प्रान्त मीडिया प्रभारी
7696030173

कृष्ण बरगाड़ी स्मृति समारोह-2024



मुख्य वक्ता डा. सुखदेव सिरसा सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए



प्रसिद्ध समाजसेवक हिमांशु कुमार को कृष्ण बरगाड़ी सम्मान प्रदान करने की एक झलक



फेडरेशन ऑफ इंडियन रैशनालिस्ट एसोसिएशन (फीरा)की राष्ट्रीय बैठक



तर्कशील सोसायटी हरियाणा के पूर्व प्रधान एंव तर्कशील पथ पत्रिका के सम्पादक प्रा.बलवंत सिंह की शोक सभा,कुरुक्षेत्र मे विचार रखते हुए पत्रिका तर्कशील (पंजाबी)एंव तर्कशील पथ (हिंदी)के मुख्य सम्पादक बलबीर लोंगोवाल



गांव संघे कलां (पंजाब)निवासी एंव इंग्लैंड वासी साथी निर्मल सिंह जी नही रहे। वे जीवन भर तर्कशील, खेलों के प्रमोटर, वातावरण प्रेमी, समाज सेवक आदि प्रगतिशील कार्यों के प्रति समर्पित रहे।

उनके कार्यों को सलाम करते हुए उनके निधन पर तर्कशील सोसायटी गहरे दु:ख का इजहार करती है

शोक समाचार



साथी टहल सिंह गिल -प्रधान तर्कशील सोसायटी इकाई, इस्माईलाबाद (हरियाणा) की 3 मार्च 2024 शाम को एक्सीडेंट से दु:खद मृत्यु हो गई । उनका जन्म 27.11.1959 को हुआ था परिवार में एक पुत्र व पुत्री हैं जिनकी शादी हो चुकी है। वे 1997 में मास्टर बलवंत सिंह के सम्पर्क में आए और तर्कशील आंदोलन में सक्रिय हो गए। उन्होंने अपने गांव नैन्सी में1997 में तर्कशील मेला करवाया इसके बाद 1999 में इस्माईलाबाद में मेले का आयोजन करने में अहम भूमिका निभाई। इसके अलावा विभिन्न तर्कशील बैठकों,सेमिनारों में सक्रियता से भाग लिया करते थे वे मास्टर बलवंत सिंह के साथ बहुत सारे ओपरी पराई केसों में शामिल होते रहे।उन्होंने अम्बाला से ग्रेजुएशन किया और अपने कस्बे में बिजली के समान की दुकान खोली।

तर्कशील सोसायटी उनके आकस्मिक निधन पर गहरे दु:ख का इजहार करती है एंव परिवार के प्रति संवेदना प्रकट करती है।

विचार रखने की स्वतंत्रता के समर्थन में और धारा 295ए के विरुद्ध , 27 फरवरी 2024 को सम्पन्न , विभिन्न संगठनों की जलन्धर में आयोजित संयुक्त कनवेंशन



सम्बोधन करते हुए मा. राजेन्द्र भदौड़ और प्रो.जगमोहन सिंह



कनवेंशन में शामिल विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधि



कनवेंशन में उपस्थित इंसाफ पसंन्द जनमानस का समूह



किसान संघर्ष में शहीद हुए नौजवान शुभ करमन सिंह और शहादत पाने वाले सात देश भक्तों को आदरांजलि अर्पित करते हुए जन समूह



कनवेंशन के उपरांत रोष प्रदर्शन की एक झलक



मांग पत्र सौंपते हुए जनतक संगठनों के प्रतिनिधि

If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....